हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का पुनरावलोकनः-

लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद (१८५७-१९४७)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

बद्री नारायण तिवारी

शोध निर्देशक

प्रो० राधेश्याम

शोध सार

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९३

शोधसार

भारत में राष्ट्रवाद का इतिहास रचने के लिये आधुनिक भारत के इतिहासकारों ने अनेक प्रयास किए हैं। राष्ट्रवाद के इतिहास का निर्माण एवं पुननिर्माण की प्रक्रिया जारी है। इतिहास की प्रयोगशाला में अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं। फिर भी इस दिशा में हमारी प्रगति संतोषजनक नही की जा सकती। इन उद्यमों के परिणामस्वरुप हमें राष्ट्रवाद का समतल एवं अपूर्ण रुप ही प्राप्त हुआ है। भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास की व्यापकता एवं गहराई की प्राप्ति अभी हमारे समक्ष चुनौती है। इसी चुनौती का सामना करते हुए मैने लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद के स्वरुप को समझने का प्रयास किया है।

लोकचेतना में निहिति राष्ट्रवाद को तत्कालीन भारत में विद्यमान राष्ट्रवादी चेतना के अन्य रुपों के सन्दर्भ में देखने के लिए हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का पुनरावलोकन भी किया गया है। यों भी हमारा सम्बंध हिन्दी प्रदेश के लोक से, विशेषकर जिस भोजपुरी लोक से है, उस समाज के शहरी, अभिजात्यवर्ग, तत्कालीन नवजात मध्यवर्ग की प्रतिक्रिया लिखित प्रकाशित हिन्दी साहित्य में संचित है।

भारत जैसे बहुजातीय, बहुस्तरीय एवं विभिन्न राष्ट्रीयताओं एवं सांस्कृतिक इकाई के देश में राष्ट्रवाद का एक रूप नहीं हो सकता। इस परिकल्पना के साथ यह शोध भारत में राष्ट्रवाद के रुप की बहुलता पर

आधारित है।

यदि लोक संस्कृति अपने निर्माण के दौर में निर्मित करने वाली शक्तियों की रचनात्मक प्रतिक्रिया है, तो इस अध्ययन में जनप्रतिक्रियाओं को भी आधार बनाया गया है। अब तक भारत में राष्ट्रवाद के अध्ययन में इतिहासकारों द्वारा परिणाम को ज्यादा महत्व दिया गया है। वह प्रकिया जिसके द्वारा ये परिणाम प्राप्त हुए, का अध्ययन करना राष्ट्रवाद का सामाजिक इतिहास रचने के लिए हमें अत्यंत आवश्यक लगा है। तत्कालीन लोक प्रतिक्रियाओं के द्वारा हमने भारतीय जन के एक सीमित समूह में राष्ट्रवाद के निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

हम भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक उपादानों का प्रयोग तो कर रहे हैं किन्तु सांस्कृतिक उपादानों के सक्षम उपयोग में हमने सफलता नहीं पाया है। इतिहास लेखन में सांस्कृतिक उपादानों का हम यदि सही संदर्भों में प्रयोग करें तो भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास में नवीनता एवं समृद्धि दोनों आयेगी। यदि राष्ट्रीय मुक्ति एक सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है तो औपनिवेशिक काल में भारतीय जनता को हुए सांस्कृतिक अनुभवों का अध्ययन करना भी राष्ट्रवाद के विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए हमें अपरिहार्य लगा है।

अभी तक इतिहास लेखन की अपनी सीमाओं के कारण भारतीय राष्ट्रवाद की आभिजात्य धारा ही मुख्य रुप से हमारे ज्ञान के क्षेत्र में प्रभावी रही है। इस अध्ययन के द्वारा हमने भारतीय राष्ट्रवाद की लोकधारा को समझने का प्रयास किया है।

लोक चेतना में निहित राष्ट्रवाद को तत्कालीन भारत में विद्यमान व्यापक राष्ट्रवादी चेतना के सन्दर्भ में देखने के लिए हमने हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का पुनरावलोकन करना चाहा है। इसके लिये मूल रुप ये भारतेन्दु बाबू, प्रेमचन्द एवं यशपाल की राष्ट्रवादी अवधारणाओं का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

यह शोध अध्ययन मूलरुप में छः खण्डों में विभाजित है-

1. राष्ट्रवाद का प्रमेय।
2. हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद एक पुनर्मूल्यांकन।
3. इतिहास लेखन और लोक संस्कृति।
4. रचना का काल (1857-1900 ई0);
लोक सजगता एवं सुखदेव भगत की संघटना का वृतान्त।
5. विरचना का काल (1900-1920 ई0);
लोक संस्कृति में स्वीकार और वहिष्कार निर्धिन राम की गाथा।
6. पुनर्रचना का काल (1920-1947 ई0);
लोक चेतना में क्रियात्मक क्षमता का पुनर्निर्माण और कवि कैलाश का सन्दर्भ।

7. निष्कर्ष।

इस गवेषणा के प्रथम अध्याय में राष्ट्रवाद को एक समस्याग्रस्त अवधारणा के रूप में अविष्कृत किया गया है। विश्व में तथा भारत में विभिन्न समाज वैज्ञानिक चिन्तनों एवं इतिहास लेखन के अनेकानेक वर्गों में राष्ट्रवाद पर निरन्तर हो रहे विवादों की प्रकृति को समझकर भारत में राष्ट्रवाद की अभिधारणा के अध्ययन के लिए अन्तर्दृष्टि विकसित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में ऐतिहासिक शक्तियों के कारण हिन्दी चेतना में राष्ट्रवाद की अवधारणा में निरन्तर हुए परिवर्तनों को लक्षित किया गया है। इन परिवर्तनों से तत्कालीन हिन्दी बौद्धिकता के अर्न्तद्वन्द एवं अन्तर्विरोध को परिभाषित किया गया है। इनके मन के व्यापक राष्ट्रवाद एवं सीमित राष्ट्रवाद के विरोधाभास को चिन्हित किया गया है। भारतेन्दु से प्रेमचन्द, प्रेमचन्द से यशपाल के समय में आये परिवर्तनों को राष्ट्रवाद के चरित्र में निर्मित एवं विघटित होने की प्रक्रिया से जोड़कर देखा गया है।

हिन्दी क्षेत्र में नवजात मध्य वर्गीय, शिक्षित, नागर हिन्दी बौद्धिकों की चेतना में निहित राष्ट्रवाद के स्वरुप को समझने के पश्चात् लोक चेतना में राष्ट्रवाद को समझने का प्रयत्न किया गया है। लोकचेतना का प्रतिभास लोक संस्कृति है। अतः लोकसंस्कृति में प्रवेश कर लोकमन में

निहित राष्ट्रवाद का अध्ययन किया गया है। इसके लिए इतिहास लेखन से एक प्राविधि तलाश करने के क्रम में तृतीय अध्याय में इतिहास लेखन और लोक संस्कृति के मध्य अब तक हुए संवादों के स्वरुप को देखने का यत्न किया गया है। इसमें पश्चिमी ज्ञान के क्षेत्र में लोक संस्कृति से सम्बंधित कार्यों का निरीक्षण करते हुए उनकी प्राविधि के स्वरुप को समझने का प्रयास किया गया है ताकि एक सक्षम प्राविधि का सन्दर्भ निर्मित किया जा सके। तत्पश्चात भारत में समाज विज्ञान के विविध रुपों में लोक संस्कृति के अध्ययन की असफलता को लक्षित करते हुए इतिहास लेखन में अब तक इस अक्षुण्ण श्रोत सामग्री का उपयोग न कर पाने की सीमा एवं उसके कारणों को रेखांकित किया गया है।

औपनिवेशिक प्रवृत्तियों के प्रभावी होते जाने के बाद उपनिवेशवाद जब एक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अनुभव के रुप में व्याप्त हो गया तो लोक चेतना ने इस नयी अवस्थिति में अपने भीतर निरन्तर गतिमान रचना की प्रवृत्ति को एक आकार देना प्रारम्भ किया। लोक चेतना में इस रचना की प्रवृत्ति को 1857-1900 ई0 के मध्य सुखदेव भगत जो अछूत जाति के एक लोक सन्त थे के, माध्यम से अध्ययन किया गया है। यह रचना लोक द्वारा नवीन औपनिवेशिक अवस्थिति से टकराते हुए "अपनी चेतना की रचना" के सन्दर्भ में पाया गया। जिसे किन्हीं अर्थों में पुनर्रचना भी कहा जा सकता है।

लोकचेतना बदलते समय में स्वयं अपने मूल्यांकन से गुजरते हुए

अपने को विरचित करती है। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास के सन्दर्भ में यह विरचना आरंभ में भारतीय राजनीतिक अभिजात्य के प्रति उभरे लगाव के टूटने से भी उपजी है। जिसे 'मोहभंग' भी कहा जाता है। यों यह विरचना कई तत्वों एवं शक्तियों के मिश्रित प्रभाव से ही संभव हुआ है। इसे 1900-1920 ई0 के मध्य निर्धिन राम के इतिहास के अध्ययन से समझा गया है।

किन्तु यह विरचना लोक इतिहास में उदासीनता एवं निष्क्रियता में नहीं प्रतिफलित होती बल्कि यह पुनः एक नये पुनर्रचना की ओर बढ़ती है। इसी पुनर्रचना के दौर में अनेक 'लोक नेतृत्व' का उभार हुआ, 1942 ई0 जैसा लोक आन्दोलन जन आन्दोलन विकसित हुआ। यह पुनर्रचना लोक शक्तियों का अपने अभिजात्य पर पूर्व की निर्भरता को कम करती है। उनकी स्वतः स्फूर्तता एक 'लोक संगठन' के रुप में विकसित होती है। 1920-1947 ई0 के इस इतिहास को कवि कैलाश के लोक नेतृत्व के उभार के सन्दर्भ में अविष्कृत करने का प्रयास किया गया है।

यह गवेषणा मूलतः भोजपुरी लोकसंस्कृति पर आधारित है। ये तीनों लोक व्यक्तित्व भोजपुरी अंचलों के हैं।

इस गवेषणा में शोध अध्ययन के अन्तः अनुशासनिक दृष्टिकोण, तकनीक तथा पद्धतियों का सहारा लिया गया है। इसमें मौखिक एवं

लिखित दोनों प्रकार के श्रोतों का अवगाहन किया गया है। इसमें श्रोतों के विश्लेषण के लिए व्याख्यात्मक (Interpetative Method) पद्धति को अपनाया गया है।

इस प्रकार यह शोध अध्याय अत्यंत विनम्रता के साथ प्रस्तुत है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का पुनरावलोकनः-

लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद (१८५७-१९४७)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

बद्री नारायण तिवारी

शोध निर्देशक

प्रो० राधेश्याम

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९३

क्रम

प्रस्तावना

यह शोध अध्ययन मूलत 'लोक सस्कृति मे राष्ट्रवाद' पर केन्द्रित है। लोक सस्कृति में राष्ट्रवाद को भारत में विद्यमान राष्ट्रवाद के अन्य रूपों के सापेक्ष रखकर अध्ययन करने के लिए हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का पुनरावलोकन भी किया गया है।

भोजपुरी परिक्षेत्र से जुडे होने के कारण मैंने सुविधावश भोजपुरी लोक सस्कृति को ही अपना आधार बनाया है। इसमे प्राथमिक तथा द्वितीय, लिखित तथा मौखिक दोनों प्रकार की श्रोत सामग्रियों का उपयोग किया गया है। इसमें अन्त अनुशासनिक तकनीकों एव प्राविधियों का उपयोग किया गया है। इसमें मैंने मौखिक इतिहास की उपलब्ध प्राविधि को विकसित करने का प्रयास किया है।

यह अध्ययन सात खण्डों में विभाजित है -

1 राष्ट्रवाद का प्रमेय

2 हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रवाद एक पुनर्मूल्याकन

3. इतिहास लेखन और लोक सस्कृति

4. रचना का काल (1857-1900 ई0)

लोक सजगता एव सुखदेव भगत के सघटना का वृत्तान्त

5 विरचना का काल (1900-1920 ई0)

लोक संस्कृति में स्वीकार और वहिष्कार: मिर्धिन राम की गाथा

6. पुनर्रचना का काल (1920-1947 ई0)

लोक चेतना की क्रियात्मक क्षमता का पुनर्निमाण

और कवि कैलाश का सन्दर्भ।

7 निष्कर्ष

इस अध्ययन की कई सीमाए हैं। कुछ सीमाएं विषयजनित है, कुछ का भागी मैं स्वय हूँ। लोक सस्कृति की सम्पदा अनन्त है। सबको शोध की सीमा में बांधना कठिन है। इसलिए 'बहुत कुछ' जिनका मैं इस ढॉचे में अध्ययन नहीं कर पा रहा हूं, के प्रति ललक बरकरार है। शोध को एक ढॉचा प्रदान करने के लिए मैंने तीन लोक कवियों पर अपना तीन महत्वपूर्ण खड आधारित किया है। वे तीनों लोक चेतना के तीन काल खण्डों में प्रतिनीधि हैं। लोक सस्कृति के कुछ अन्य रूपों का उपयोग मैने अध्याय 'इतिहास लेखन और लोक संस्कृति' में किया है। इसमें लोक में सन् सत्तावन के गदर की झलक भी शामिल है। लोक संस्कृति को समय में बांधने के कारण भी इस अध्ययन की कई सीमाएं बन गई हैं। 'हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का पुनरावलोकन' का अत्यंत संक्षिप्त उपयोग राष्ट्रवाद की एक अन्य प्रवृत्ति को समझने के लिए किया गया है।

मौखिक श्रोत सामग्रियों की सीमाओं को स्वीकारते हुए अत्यन्त विनम्रता पूर्वक यह प्रयास प्रस्तावित है।

आभार

इस शोध अध्ययन के सन्दर्भ में सर्वप्रथम अपने गुरू प्रो0 राधेश्याम जी अध्यक्ष - मध्य/आधुनिक इतिहास विभाग इ0 वि0 वि0, इलाहाबाद का आभारी हूँ जिनके कुशल एवं स्नेहिल निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हुआ। उन्होने हर क्षण मुझे अन्तर्दृष्टि दी तथा कदम-कदम पर उत्साहवर्द्धन किया।

मैं भोजपुरी अचलों की उस समस्त जनता के प्रति ऋणी हूँ, जो लोक सस्कृति की रचनाकार है। मैं उन सब लोगों का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे साक्षात्कार दिए, मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ, लोकगीत तथा विवरण अपनी स्मृतियों से सुनाए। मैं विशेषत सीताराम पुस्तकालय, ग्राम- जनईडीह, जिला भोजपुर के सचिव रामजी तिवारी का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे निर्धिनराम द्वारा कैथीलिपि में हस्तलिखित रामायण उपलब्ध कराया। कठिन एवं चुनौतीपूर्ण क्षेत्रीय अध्ययन में सहायता के लिए मैं मुकेश और बिनोद का आभारी हूँ।

मैं प्रो0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय (दिल्ली विश्वविद्यालय) का विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने इस शोधकार्य में मुझे अन्तर्दृष्टि प्रदान की। मैं उनका ऋणी हूँ कि उन्होनें मुझे विचार विमर्श के रूप में अपना बहुमूल्य समय प्रदान किया।

मैं अपने विभाग के अन्य शिक्षकों प्रो0 लाल बहादुर वर्मा, डॉ0 सुशील श्रीवास्तव, डॉ0 एन0 आर0 फारूकी, वी0 सी0 पाण्डेय, ललित जोशी का आभारी हूं, जिन्होंने सदैव मेरा उत्साह वर्द्धन किया।

मैं उस समस्त बौद्धिक समाज के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने कभी भी, किसी क्षण मुझसे इस विषय पर विचार विमर्श किया।

इस शोधकार्य के दौरान मेरे पिता श्री युगल किशोर तिवारी जी ने सदैव मुझे सम्बल प्रदान किया, माँ ने स्नेह।

प्रथम अध्याय

राष्ट्रवाद का प्रमेय

राष्ट्रवाद का प्रमेय अत्यत दु.साध्य है। इसकी परिकल्पना एव अवधारणा के स्तर पर ही कई समस्याए एव विवाद हैं। इतिहासकार सतत् इसके अध्ययन के लिए नये प्रयोग, प्रविधि एवं तकनीकि का विकास कर रहे हैं। एक ओर, विचार एवं विचारों के मध्य विवाद इसके नये रूपों को समझने में सहयोग कर रहे हैं, दूसरी ओर आधुनिक इतिहासकारों के नये शोध इसकी व्यापकता एव बहुविधि पक्षों को सामने ला रहे हैं।

राष्ट्रवाद की अवधारणा की प्राविधि का विकास करते हुए अपने एक शोधपरक लेख में जान प्लामेन्टाज (JOHN PLAMENTAJ) ने दो प्रकार की राष्ट्रीयता की व्याख्या की है।[1] दोनों में ही राष्ट्रीयता अपने मूलभूत चरित्र में एक सास्कृतिक सघटना है। यद्यपि ये प्रायः राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। इनमें से एक प्रकार की राष्ट्रीयता पाश्चात्य है जो मूलरूप से पश्चिमी यूरोप में विकसित हुई है और दूसरी पूर्वीय - जो पूर्वी यूरोप एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में पायी जाती है। दोनों ही प्रकार की राष्ट्रीयता कुछ सामान्य प्रतिमानों के स्वीकरण पर आश्रित हैं- जिनके द्वारा किसी विशिष्ट राष्ट्रीय सस्कृति के उत्थान का मूल्याकन होता है।

पूर्वीय राष्ट्रीयता उन लोगों के मध्य जन्मी है जो कि एक ऐसी सभ्यता की ओर खीच लाये गए हैं और जिनके पूर्वजों की सस्कृति ने इस नवीन सभ्यता के सर्वदेशीय एव प्रभावशाली शर्तों को अपने सन्दर्भ में अनुकूलित नही किए हैं। उन लोगों ने भी अपने राष्ट्रों के पिछड़ेपन का मूल्याकन पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों द्वारा ही निर्धारित कुछ

निश्चित, सार्वभौम और विश्वव्यापी मूल्यों के आधार पर किया है। किन्तु स्पष्टतया यहां यह बोध भी है कि ये मूल्य एक परायी सस्कृति से आए हैं और राष्ट्र की पारपरीण सस्कृति इतना सबल नही प्रदान करती कि विकास के अधार तलों को छुआ जा सके। पूर्व की राष्ट्रीयता के साथ एक ऐसा प्रयास भी जुड़ा रहा है जो परिवर्तन के लिए राष्ट्र को सास्कृतिक रूप से पुनर्निर्मित कर सके। लेकिन यह उस परायी सस्कृति की नकल मात्र से सभव नही है। ऐसी स्थिति में एक राष्ट्र अपनी विशिष्टि अस्मिता ही खो बैठेगा। अत: यह एक ऐसी राष्ट्रीय सस्कृति के पुनरुद्धार की खोज थी जो विकास के पश्चिमी प्रतिमानों के अनुकूल तो हो पर अपनी विशिष्टता और अस्मिता भी सुरक्षित रख सके।

यह प्रयास अन्तर्विरोधी है- क्योकि यह जिस प्रतिरूप का नकल करता है उसी का विरोधी भी है। इसके भीतर कही एक अस्वीकार की भावना भी छिपी है, वस्तुत यह दो तरह के अस्वीकारों की सगति है जो अत्यत द्वैध पूर्ण है - उस पराये घुसपैठिए और शासक का अस्वीकार, जिसका अनुकरण करना है और उन पारपरिक युक्तियो का त्याग, जो राष्ट्रों के उत्थान में बाधक है किन्तु वे अस्मिता के स्मृति चिन्ह भी हैं। यह द्वैध वृत्ति अत्यंत विस्मयकारी और विक्षुप्त करने वाली है। पूर्वीय राष्ट्रवाद अत्यत विक्षोभपूर्ण और उभयभावी है।

अपने अन्य लेखों की भाति प्लमेन्टाज का यह लेख वैसी गहन व्याख्या और तीव्र विवाद तो प्रस्तुत नही करता है, फिर भी यह पर्याप्त स्पष्टता के साथ राष्ट्रीयता के विचार के उदार-राष्ट्रवादी की द्विविधा को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार की द्विविधा राष्ट्रवाद के उदारवादी इतिहास में दृष्टिगोचर होती है- मुख्यतया हासकोहन (HANSKOHN) के लेखन में।[2]

"इस शैली का इतिहास लेखन राष्ट्रवाद को स्वतत्रता की गाथा के रूप में चित्रित करता है। इसका उद्भव सार्वभौम इतिहास की अवधारणा के जन्म के साथ ही हुआ, और इसका विकास उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का ही एक अग है, जिसके अन्तर्गत औद्योगीकरण और लोकतत्र का उदय हुआ। अत राष्ट्रवाद स्वातत्र्य और विकास के लिए विश्वव्यापी आग्रह का राजनीतिक अर्थों में रुपान्तरण एव आत्मसातीकरण को प्रकट करता है। स्वतत्रता की उसी गाथा के अविच्छिन्न हिस्से के रूप में राष्ट्रवाद को विवेकपूर्ण और उच्च राजनीतिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए युक्तिमूलक सैद्धान्तिक ढाँचे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[3] किन्तु अर्वाचीन इतिहास में राष्ट्रवाद की अवस्थिति ऐसी कतई नही रही है। "यह अब तक के सर्वाधिक सहारकारी युद्ध का कारण रहा है। इसने नाजीवादी और फासीवादी अत्याचारों एव नृशसता को एक प्रकार की वैधता प्रदान की, यह उपनिवेशों में जातीय विद्वेष का सैद्धान्तिक आधार बन गया है और इसने सर्वाधिक अविवेकपूर्ण पुनरूत्थान आन्दोलनों एव समकालीन विश्व के दमनकारी राजनीतिक शासनों को जन्म दिया है। वस्तुत· ऐसे पर्याप्त प्रमाण हैं जो राष्ट्रवाद और स्वतत्रता की अवधारणा को बहुधा असगत दशति हैं।[4]

मार्क्स ने भी राष्ट्रवाद की अवधारणा पर अपने लेखन में विचार किया है। उन्होंने अपने चिन्तन में राष्ट्रवाद को कभी एक सैद्धान्तिक समस्या के रूप में नही देखा।[5] इस विषय में अधिकांश विवाद और निष्कर्ष उनके द्वारा अपने बेहद सक्रिय राजनीतिक जीवन और लेखन कार्य के दौरान की गई टिप्पणियों पर आधारित हैं।

द्वितीय एवं तृतीय इन्टरनेशनल में इस प्रश्न की विशद चर्चा है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान लेनिन का है। जिन्होंने एक विराट बहुजजातीय राष्ट्र में क्राति का नेतृत्व करते हुए राजनीतिक लोकतंत्र को राष्ट्रवाद की मार्क्सवादी व्याख्या में मूलतत्व के रूप में देखा। किन्तु लेनिन के विचार राष्ट्रवाद के सैद्धान्तिक आधारों की रचना की ओर

परिलक्षित नहीं थे।

होरेस वी डेविस ने इन विवादों का सार सकलन किया है। वे भी दो प्रकार के राष्ट्रवाद की अवधारणा को स्वीकार करते हैं-प्रथम प्रबुद्धता का राष्ट्रवाद जो मूलत भावात्मक होने की जगह तार्किक है और द्वितीय सस्कृति और परपरा पर आधारित राष्ट्रवाद जिसे फिक्टे और हर्डर जैसे जर्मन रोमाटिक लेखकों द्वारा विकसित किया गया है।[6]

गैर यूरोपीय विश्व में राष्ट्रवाद का स्वरूप क्या है ? यहाँ यह प्रश्न अत्यन्त विचारणीय है। यहाँ राष्ट्रवाद का सम्बध ऐतिहासिक दृष्टि से उपनिवेशवाद के प्रश्न से सम्बद्ध है। राष्ट्रीय अस्मिता पर बल वस्तुत· उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध सघर्ष के रूप में था।

बेनेडिक्ट एन्डरसन राष्ट्रवाद को वाह्य और अमूर्त मानदण्डों पर परिभाषित करने से इन्कार करते हैं। इसके विपरीत वे किसी भी स्थिर एवं रुढ़िबद्ध धारणा को आमूल नष्ट करने का प्रयास राष्ट्रवाद को एक काल्पनिक राजनीतिक समूह बताकर करते हैं।[7]

सामान्य दृष्टि में उपरोक्त व्याख्या गेलनर की अवधारणा के निकट प्रतीत होती है- "राष्ट्रवाद राष्ट्रों की आत्मचेतना का बोध नही है; यह राष्ट्र को वहाँ अविष्कृत करता है जहाँ वस्तुत· वे अस्तित्व में नही होते।[8]

ऐतिहासिक दृष्टि से तीन विशिष्ट प्रकार के राष्ट्रवाद उभरे। प्रथम - अमेरिका में उभरा राष्ट्रवाद - यह राष्ट्रवाद उन वर्गों की महत्वाकांक्षाओं पर टिका था जिनके आर्थिक उद्देश्य महानगरों के विरुद्ध थे। इसने यूरोप से उदारवादी और प्रबुद्ध विचारों को भी लिया जिन्होंने साम्राज्यवाद के विरुद्ध वैचारिक आलोचना को जन्म दिया। एक प्रतिदर्श के

रूप में यह राष्ट्रवाद अधूरा ही रहा, क्योकि इसके पास भाषिक इयत्ता का आभाव था और राज्य का स्वरूप कदाचित साम्राज्यवाद से मिलता-जुलता था।

द्वितीय प्रकार का राष्ट्रवाद - यूरोप का भाषायी राष्ट्रवाद था जो स्वतत्र राष्ट्रीय राज्य का प्रतिरूप भी बना।

तृतीय प्रकार का राष्ट्रवाद - राजकीय राष्ट्रवाद से उत्पन्न हुआ, जो रूस में दृष्टिगोचर होता है। इसमें सास्कृतिक एकरूपता राज्य द्वारा ऊपर से थोपी गई।

ये सारे राष्ट्रवाद के स्वरूप बीसवी सदी में तृतीय विश्व के राष्ट्रवाद के समक्ष विद्यमान थे।

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा पर वाद - विवाद-

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा अपनी निर्मिति की प्रक्रिया से ही वाद - विवाद का सामना करता रहा है या यू कहें वाद-विवाद की प्रक्रिया से ही इसकी निर्मित्ति भी सभव हो सकी है।

इस वाद-विवाद में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप मार्क्सवादी इतिहासकारों ने किया। उनके हस्तक्षेप की दिशा मूलतः मार्क्स के 1853 ई0 में लिखित लेख भारत मे बिट्रिश शासन पर आधारित था।[9]

उपरोक्त विचार पूर्ण एव तथ्यपूर्ण लेख में कार्ल मार्क्स ने भारत में उपनिवेशवाद एव राष्ट्रवाद के अदृश्य अन्तःसम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए मतव्यक्त किया है कि भारत में एक

सामाजिक क्रान्ति आरम्भ करने में इग्लैण्ड ने अपने अत्यत निम्नकोटि के स्वार्थों को साधा है। उन्होंने इस स्वार्थ साधन एवं अत्याचार को कही न कही क्रान्ति लाने में इतिहास के एक अवचेतन अस्त्र के रूप में भी देखने का आग्रह किया है।

अत्यन्त तार्किक एव बौद्धिक ढग से भारतीय राष्ट्रवाद के मार्क्सवादी अवधारणा को विकसित करने वालों की श्रृखला में विकासमान समय में अनेक विद्वान अपनी भूमि का निर्वाह करते रहे।[10]

इस सम्बन्ध मे मार्क्सवादी दृष्टि की सीमाओं को उद्घाटित करते हुए पार्थ चटर्जी ने इस इतिहास धारा को भी राष्ट्रवाद के उदारवादी इतिहास की तरह उपाख्यानात्मक माना है।[11]

किन्तु इस मत पर सर्वसम्मति है कि अपने राजनैतिक मतभेदों के बावजूद मार्क्सवादी इतिहासकारों की एक सम्पूर्ण पीढ़ी भारत के 19वी व 20वी शदी के बौद्धिक इतिहास को प्रतिक्रियावादी और विकासशील शक्तियों का सघर्ष मान राष्ट्रवाद के नये एव पूर्ण इतिहास के निर्माण के लिए पथ प्रशस्त किया। इस धारा में मूल्याकन - पुनर्मूल्याकन, आलोचना-प्रत्यालोचना की तीव्र आकाक्षा थी। इस आकाक्षा ने नये तथ्यों का शोधन किया। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में कई बार यह स्पष्ट हुआ कि जो राष्ट्रीय था वो सदैव धर्म निरपेक्ष और आधुनिक नही था और जो लोकप्रिय तथा लोकतात्रिक था वह कई बार पारपरिक और गैर आधुनिक था।[12]

ऐतिहासिक सवाद के क्रम में मार्क्सवादी व्याख्याओं पर कई प्रश्नचिन्ह लगाए गए। आधार, संस्कृति और तत्र के सम्बन्धों की प्रकृति की पुर्नसमीक्षा का आग्रह किया गया। किन्तु ये नये प्रश्न भी मार्क्सवादी ढाँचे के भीतर से ही उद्भूत हुए। उदाहरणार्थ - 19वी

सदी के पुनर्जागरण की मार्क्सवादी अवधारणा की कटु आलोचना करते हुए सुमित सरकार ने यह लक्षित किया कि मार्क्सवादी विचारकों ने आधुनिक भारतीय चिंतन के उद्‌भव को पाश्चात्य आधुनिकतावाद और परपरावाद के बीच सघर्ष के रूप में दिखाते हुए कई विश्लेष्य जटिलताओं को न समझने की भूल की है। सुमित सरकार के अनुसार राम मोहन राय का परपरा से विच्छेद वस्तुत बौद्धिक धरातल पर ही था न कि मूलभूत सामाजिक परिवर्तनों के तल पर। अपने आर्थिक चिंतन में उन्होने स्वतत्र व्यापार के प्रचलित तर्क को स्वीकार किया और बगाल में अग्रेज व्यापारियों के साथ एक पराश्रित बूर्ज्वा विकास को भी लक्षित किया।[13]

इस सवाद में मुख्य तर्क यह था कि इसके बावजूद कि आधुनिकता के तत्व 19वी सदी के सास्कृतिक-बौद्धिक आन्दोलन मे विद्यमान थे, ये तब तक कोई अर्थवत्ता ग्रहण नही कर सकते जब तक कि वे एकतरफ तत्कालीन सामाजिक आर्थिक रचना और दूसरी तरफ शक्ति के सन्दर्भों से पहचान नही लिए जाते हैं। इस तर्क पद्धति, दृष्टि एव पहचान के बाद राजाराम मोहन राय जैसे 19वी सदी के आधुनिकतावादी प्रणेता की उपलब्धियां उच्च हिन्दू मानस और औपनिवेशिक ढाँचे में ही सकुचित प्रतीत होती है।

इस प्रकार के विश्लेषण को 19वी सदी के बगाल के समाज सुधारक ईश्वर चन्द्र विद्यासागर पर आधारित अध्ययन अशोक सेन द्वारा अधिक व्यापक ढग से विकसित करते हुए भारतीय राष्ट्रवाद में पुर्नजागरण के चरण का इतिहास रचने का सार्थक प्रयास किया गया।[14]

अत्यन्त तन्मय होकर औपनिवेशिक काल के बौद्धिक इतिहास पर प्रो0 के0 एन0 पनिक्कर द्वारा किये गए अध्ययनो ने पुर्नजागरण की इतिहास रचना को सम्भ्रान्तता प्रदान की है।[15]

भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के विकास मे प्रो0 विपन चन्द्र के शोध परक अध्ययनों का महत्व विवादों से परे समझा जाना चाहिए।

भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास को एक अन्विति प्रदान करने में प्रो0 आर0 एल0 शुक्ल की भूमिका को भी रेखाकित करने की आवश्यकता है।[16]

भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास पर वाद-विवाद में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप उपाश्रयी अध्ययनों से जुड़े इतिहासकारों ने की है। प्रो0 रणजीत गुहा भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास लेखन की चुनौतियों पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त करते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास लेखन एक लबे अतराल से आभिजात्यवाद के प्रभाव तले रहा है। यह अभिजात्य वाद दो प्रकारों से उपस्थित रहा है। औपनिवेशिक आभिजात्यवाद एव बुर्जुआजी राष्ट्रवादी अभिजात्य वाद। ये दोनों भारत में अग्रेजी राज के वैचारिक उपज के रूप में उभरे किन्तु नव उपनिवेशवादी एव नव राष्ट्रवादी वैचारिक बहसो के रूप में भारत और ब्रिटेन में अब भी जीवित है। इसके मुख्य प्रणेता ब्रिटिश लेखक और वहाँ के सस्थान रहे हैं। लेकिन इनके पीछे चलने वाले भारत तथा अन्य देशों में भी हैं। राष्ट्रवादी एव नवराष्ट्रवादी इतिहास लेखन मुख्यतया एक भारतीय चलन है, जिसके अनुरूप काम करने वाले उदारवादी लेखक ब्रिटेन और अन्यत्र भी हैं।[17] इस विवाद को और तीव्र करते हुए प्रो0 रणजीत गुहा कहते हैं आभिजात्यवाद के इन दोनों स्वरूपों की यह पक्षपातपूर्ण धारणा रही है कि भारत का एक राष्ट्र के रूप में निर्माण और इसकी राष्ट्रीय चेतना का विकास अत्यातिक रूप से और पूर्णरुपेण अभिजात्य उपलब्धिया रही हैं। जहा इसका श्रेय उपनिवेशवादी एव नव उपनिवेशवादी इतिहास लेखकों के यहा ब्रिटिश शासकों, प्रशासकों, नीतियों, संस्थानों एवं संस्कृति को है वहीं राष्ट्रवादी एवं नवराष्ट्रवादी इतिहास लेखन में यह श्रेय अभिजात्य चरित्रों, संस्थानों उनके क्रियाकलापों तथा विचारों को है।[18]

वे समकालीन इतिहास लेखन के मूल ढाचे पर आक्रमण करते हुए कहते हैं कि "इतिहास लेखन के प्रथम दो स्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद को प्राथमिक रूप से उत्प्रेरित एव प्रभाव ग्रहण की प्रक्रिया का फलन मानते हैं। सकीर्ण व्यवहारवादी दृष्टिकोण पर आधारित उनकी दृष्टि राष्ट्रवाद को उपनिवेशवादी सस्थानों, अवसरों और सस्थानों के साथ भारतीय अभिजात्य वर्ग की वैचारिक प्रतिक्रियाओं और गतिविधियों के कुल योग के रूप में देखते हैं। इस इतिहास लेखन के कई स्वरूप हैं किन्तु एक केन्द्रीय वस्तु है जो इन सबके बीच सामान्यतया पायी जाती है। वह यह है कि भारतीय राष्ट्रवाद मुख्यरूप से सीखने की या सुसस्कृत होने की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें भारतीय अभिजन, शासक अग्रेजों द्वारा नियत्रित विभिन्न सस्थानों, तत्रो और सास्कृतिक जटिलताओ को समझने और उससे सवाद स्थापित करने की कोशिश करता है। वस्तुत भारतीय अभिजन को इस दिशा में प्रेरित करने वाली शक्ति कोई उच्च वैचारिक आदर्श न होकर औपनिवेशिक शासन द्वारा रची गई और उससे अभिन्न उसके ऐश्वर्य धन, शक्ति एव यश मे साझेदारी का लोभ था।

प्रो0 रणजीत गुहा के अनुवार दूसरे प्रकार के राष्ट्रवाद के कई रूप दृष्टिगत हो सकते हैं। परन्तु उन सबमें यह सामान्य मान्यता रही है कि भारतीय राष्ट्रवाद यहाँ के कुलीनवर्ग के आचारों एव सद्‌गुणों की ऐसी अभिव्यक्ति रहा है जो उनके त्याग और परोपकार के कारण उन्हें अग्रेजों का निरा साझेदार ही न बनाकर लोकहित में काम करने वाली स्वतत्र इकाई में भी स्थापित करता है। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास "यहाँ के अभिजात्यवर्ग की आध्यात्मिक जीवनी के रूप में लिखा गया है।[20]

इन तीव्र एवं विचारपूर्ण आलोचनाओं के पश्चात् प्रो0 गुहा इस शोध पत्र में अभिजात्यवादी इतिहास लेखन के सकारात्मक पक्ष की भी व्याख्या करते हैं। उनकी दृष्टि में "यह उपनिवेशवादी शासन की सरचना, वर्ग सघर्ष, विभिन्न ऐतिहासिक घटको की

भूमिका, वैचारिक विकास और दो तरह के अभिजात्य की आतरिक विडम्बना को भी दर्शाता है। अतत: यह इतिहास लेखन के वैचारिक चरित्र को समझने में हमारी मदद करता है।[21]

विवादों की राजनीति से थोड़ा हटकर अगर देखा जाये तो प्रो0 गुहा के तर्कों में शक्ति है। जहाँ वे कहते हैं कि - अभिजात्यवादी इतिहास लेखन की दरिद्रता राष्ट्रीयता के निर्माण में विराट जनमानस की स्वत स्फूर्त और स्वप्रेरित हिस्सेदारी को न समझ पाना है। या जहाँ वे भारतीय अभिजात्य वर्गीय राजनीति के समानान्तर ही चल रही निम्न जातीय वर्गों और समूहों की अत्यत प्रभावशाली राजनीति को समझने का आग्रह करते हैं। वास्तव में सगठन सम्बद्धता के अध्ययन से जिस अभिजात्य राजनीति के एकरैखिकता के सिद्धान्त का विकास हुआ है उससे निम्न वर्गों की राजनीति के क्षैतिज स्वरूप को नही समझा जा सकता।[22]

इन समस्त सकारात्मक तथ्यों के बावजूद प्रो0 रणजीत गुहा ने औपनिवेशिक अभिजात्य एव बुर्जुआ राष्ट्रीय अभिजातय को एक ही साथ रखने की चेष्टा की है। उनके इस कृत्य को इतिहास के बौद्धिकों के मध्य "अतिवादी व्याख्या[23] की सज्ञा दी गयी है।

विवादों की इस श्रृखला के साथ ही उपाश्रयी अध्ययन से जुड़े इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में किसान राष्ट्रवाद सम्बधी अवधारणा को स्थापित करने में पहल की है।[24] इन्होंने आन्दोलन, सगठन, दमन के नये रूपों का अध्ययन कर भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास की रचना में महत्वपूर्ण सहायता की है। किन्तु इन्होंने भी भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास रचने में नये एव अछूते श्रोतों के प्रयोग में व्यापक सफलता नही पायी है।

वस्तुतः भारत में राष्ट्रवाद का इतिहास रचने के अनेक प्रयासों और प्रयोगों के बाद भी अभी तक हमें राष्ट्रवाद का समतल, छिछला एव फॉर्मूला बद्ध रूप ही प्राप्त हुआ है। भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास की व्यापकता एव गहराई प्राप्त अभी हमारे समक्ष चुनौती है।

अब तक भारत में राष्ट्रवाद के अध्ययन में इतिहासकारों द्वारा "परिणाम" को ज्यादा महत्व दिया गया है। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा ये परिणाम प्राप्त हुए हैं, का अध्ययन राष्ट्रवाद का सामाजिक इतिहास रचने के लिए एक आवश्यक किन्तु चुनौतीपूर्ण कार्य है।

हम भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास के पुनर्निमाण में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक उपादानों का प्रयोग तो कर रहे हैं किन्तु सास्कृतिक उपादानों के श्रेष्ठतर उपयोग एव प्रयोग में अभी हमने सफलता नही पायी है। इतिहास लेखन में सास्कृतिक उपादानों का हम यदि उचित सन्दर्भों में प्रयोग करें तो भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास में नवीनता और समृद्धि दोनों आयेगी। यदि राष्ट्रीय मुक्ति एक सास्कृतिक प्रक्रिया भी है तो औपनिवेशिक काल में भारतीय जनता को हुए सास्कृतिक अनुभवों का अध्ययन करना भी राष्ट्रवाद के विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए आवश्यक है।

अब तक जन प्रतिक्रियाओं को आधार बनाकर राष्ट्रवाद का इतिहास रचने के प्रयास न के बराबर हुए हैं। यदि लोक सस्कृति अपने निर्माण के दौर में निर्मित करने वाली शक्तियों की रचनात्मक प्रतिक्रिया है तो लोक में व्याप्त राष्ट्रवाद की अवधारणा का अध्ययन हमारे समक्ष एक गम्भीर चुनौती है।

अभी तक वास्तव में अभिजात्य इतिहास लेखन की अपनी सीमाओं के कारण भारतीय राष्ट्रवाद की अभिजात्य धारा ही मुख्य रूप से ज्ञान के क्षेत्र में प्रभावी है। भारतीय राष्ट्रवाद

की लोक धारा को समझना भी हमारे लिए एक इतिहास प्रदत्त जिम्मेदारी है।

इस अध्ययन में हमारा श्रेय और प्रेय भोजपुर की लोक सस्कृति में राष्ट्रवाद की अवधारणा को समझना है। लोक सस्कृति में राष्ट्रवाद की अवधारणा को तुलनात्मक रूप से अध्ययन करने के लिए हिन्दी साहित्य के माध्यम से उभर रही राष्ट्रवादी चेतना जो मुख्यत. इस समाज के शहरी अभिजात्य वर्ग, तत्कालीन नवजात मध्यवर्ग की प्रतिक्रिया से जुड़ी थी, को समझना हमारी आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अवधारणा के परख के लिए गहन अध्ययन के रूप में हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द्र तथा यशपाल पर स्वय को केन्द्रित करते हैं।

फुट नोट्स :

1. जॉन प्लमेन्टाज, इयजिन कामेनका द्वारा सम्पादित नेशनलिज्म, द नेचर एण्ड इवोल्यूशन आफ (लन्दन-एडवार्ड अरनाल्ड, 1914), में सकलित लेख टू टाइम्स ऑफ नेशनलिज्म में पृष्ठ 23-36

2. हस कोहन, द आइडिया ऑफ नेशनलिज्म (न्यू यॉर्क, मैकमिलन 1944),

- दि एज ऑफ नेशनलिज्म (न्यूयार्क,हार्पर, 1962)
- नेशनलिज्म, इट्स मिनिंग एण्ड हिस्ट्री (प्रिन्सटन, 1955)

3. पार्थ चटर्जी, नेशनलिस्ट थॉट एन्ड दि कॉलोनियल वर्ल्ड ए डिराइवेटिव डिस्कोर्स ? (यूनाइटेड नेशन्स यूनिवर्सिटी प्रेस)

4. वही

5. वही

6. पार्थ चटर्जी ने अपनी पुस्तक नेशनलिस्ट थॉट एण्ड दि कॉलोनियल वर्ल्ड, ए डिराइवेटिव डिस्कोर्स में इस मत पर विस्तृत विचार किया है

7. पार्थ चटर्जी ने अपनी पुस्तक नेशनलिस्ट थॉइ एण्ड दि कॉलोनियल वर्ल्ड, ए डिराइवेटिव डिस्कोर्स में बेनडिक्ट एन्डरसन की इस मान्यता को व्याख्यायित किया है

8 एरनेस्ट गेलनर, थॉट एन्ड चेन्ज (लन्दन विडेन फेल्ड एण्ड निकॉलस, 1964) पृष्ठ-147-78

9. कार्ल मार्क्स, द ब्रिटिश रूल इन इन्डिया कार्ल मार्क्स और एफ एनगिल्स, " द फस्ट इन्डियन वार ऑफ इन्डिपेन्डेन्स 1857-1859 (मॉस्को, फॉरेन लैन्गेवेजेज, पब्लिशिंग हाउस, 1959) पृष्ठ- 20

10 आर पी दत्त, इन्डिया टुडे (बाम्बे, जी पी एच 1949), ए.आर देसाई, सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इन्डियन नेशनलिज्म (बाम्बे, पॉपुलर बुक डिपो 1948), डी एन धनागे, पिजेन्ट मूवमेंन्ट इन इन्डिया (1920-1950) ओ.यू पी , 1983), बिपन चन्द्र, दि राइज एन्ड ग्रोथ ऑफ इकॉनोमिक नेशनलिज्म इन इण्डिया, पी पी एच 1966, सुमित सरकार, मार्डन इन्डिया (1885-1947) मैकमिलन, 1955, राम मोहन रॉय एन्ड दि ब्रेक विथ द पास्ट (वी सी जोशी द्वारा सम्पादित पुस्तक राम मोहन रॉय एण्ड द प्रोसेस ऑफ मॉडर्नाइजेशन इन इन्डिया) दिल्ली, विकास 1975 में

11 पार्थ चटर्जी, नेशनलिस्ट थॉट एन्ड कॉलोनियल वर्ल्ड, ए डिराइवेटिव डिस्कोर्स ? (यू0 एन0 यू0 1986) पृष्ठ- 10-17

12 वही, पृष्ठ- 20

13. सुमित सरकार, राजाराम मोहन रॉय एन्ड दि ब्रेक विथ द पास्ट (वी.सी.जोशी द्वारा सम्पादित पुस्तक राम मोहन रॉय एन्ड दि प्रोसेस ऑफ मॉडर्नाइजेशन इन इन्डिया) दिल्ली, विकास, 1975

14. अशोक सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर एन्ड हिज इल्यूसिव माइलस्टोनस, कलकत्ता, (रिद्धी), इन्डिया 1977)

15 के0 एन0 पनिक्कर का शोध पत्र कल्चर एण्ड इडियॉलजी (कन्ट्राडिक्सन इन इन्टेनेक्चुअल ट्रान्सफॉर्मेशन ऑफ कॉलोनियल सोशाइटि इन इन्डिया) इ पी डब्लू दिसम्बर-5, 1987 में प्रकाशित

16 प्रो0 आर0 एल0 शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली, पुनर्मुद्रण 1992

17 रणजीत गुहा, सबॉल्टर्न वाल्यूम 1 (ओ यू पी) की भूमिका में

18. वही, पृष्ठ- 3

19. वही, पृष्ठ- वही

20. वही, पृष्ठ- वही

21. वही, पृष्ठ- वही

22. वही, पृष्ठ- वही

23. वामपथी बौद्धिकों एव इतिहासकारों के मध्य यह मत प्रचलित है

24. ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, दि एसेन्डेन्सी ऑफ कॉग्रेस इन यू पी - ए स्टडी आफ इम्परफेक्ट मोबेलाइजेशन, (ओ यू पी) पिजेन्ट रिवोल्ट एन्ड इन्डियन नेशनलिज्म, पिजेन्ट मूवमेंट इन अवध, 1921-22, रुबॉल्टर्न स्टडी; साहिद अमीन - गॉधी एज महात्मा (सबॉल्टर्न स्टडीज वाल्यूम III, ओ यू पी में प्रकाशित)

द्वितीय अध्याय

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद : एक पुनर्मूल्यांकन

पुनर्मूल्याकन ज्ञान के क्षेत्र में एक कठिन कार्य है। किसी भी समय में मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन के साथ पुनर्मूल्याकन की आवाज उठायी जाती है। पुनर्मूल्यांकन सदैव नवीन आलोक में ही सम्भव है। नवीन आलोक की प्राप्ति मात्र बौद्धिक ही नही एक आध्यात्मिक प्रक्रिया भी है। इसकी प्राप्ति की गतिकी अपने मूलरूप में ऐतिहासिक होती है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद का पुनर्मूल्याकन एक बृहत् कार्य है। इस शोधकार्य के सन्दर्भ में हमें इसकी आवश्यकता औपनिवेशिक काल में निर्मित हो रहे मन को समझने के लिए पड़ रही है। प्राय: हिन्दी के साहित्यकार तत्कालीन उदित हो रहे शिक्षित नये मध्य वर्ग से सम्बन्धित रहे हैं। इनमें से अधिकांशत: अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय समाज में लाये गये विकास से सम्पर्क रखते हुए, प्रतिक्रिया करते हुए राष्ट्रवाद से जुड़े रहे हैं। इनकी चेतना की निर्मिति में नागर चेतना का अंश भी स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। इसलिए हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की निर्मिति का अध्ययन तत्कालीन भारतीय राष्ट्रवाद के विभिन्न प्रतिदर्शों को समझने के लिए हमें आवश्यक प्रतीत हुआ है। जिस समय लोक सस्कृति में राष्ट्रवाद की अभिक्रिया सक्रिय थी, उसी समय शिक्षित मध्यमवर्गीय, नागर चेतना में राष्ट्रवाद का कौन सा प्रतिदर्श रूप ले रहा था, इसका आईना हिन्दी साहित्य हो सकता है क्योंकि इसी समय हिन्दी क्षेत्र में इस शिक्षित मध्य वर्ग की भाषा हिन्दी बन रही थी। इसकी चेतना स्वाभाविक रूप से हिन्दी साहित्य में दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार इस अध्ययन में हमने हिन्दी साहित्य को शिक्षित मध्य वर्ग की चेतना को समझने के लिए एक स्रोत सामग्री के रूप में उपयोग किया है। यह अध्याय हमने मूलरूप से हिन्दी के तीन महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई0), प्रेमचन्द तथा यशपाल पर केन्द्रित किया है। इन तीनों के चयन का कारण यह है कि तीनों से मिलकर 1857 से लेकर 1949 तक के काल चक्र का एक नैरन्तर्य विकसित होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य से लगभग 1857 के बाद 1900 तक के ऐतिहासिक चेतना को, प्रेमचन्द के साहित्य से 1905 के बाद से 1937 तक के ऐतिहासिक चेतना को समझा जा सकता है। महान उपन्यासकार यशपाल 1937 के बाद भी सक्रिय रहते हैं। अतः इतिहास लेखन की विवशता के कारण हमने इनका चयन किया है। तीनों मूलत. गद्यकार रहे हैं। हम अत्यन्त विनम्रता पूर्वक यहाँ हिन्दी साहित्य के अन्य विधाओं का अवलोकन न कर पाने के कारण क्षमा प्रार्थी हैं।

औपनिवेशिक काल में हिन्दी मानसिकता के निर्माण की प्रक्रिया:

औपनिवेशिक आक्रमण ने हमारी आत्मा को विखण्डित कर दिया। वह आत्मा, वह चेतना जो हमें अपनी देशज जमीन से प्राप्त हुई थी, जिसे मुसलमान आक्रमणकारी एव शासक भी विघटित नही कर पाये थे उसको 19वी शताब्दी में अंग्रेजों ने विघटित कर दिया। सोंच, विचार एव सस्कृति के क्षेत्र में प्राचीनकाल से चली आ रही हमारी निरन्तरता को उन्होंने तोड़ा। किन्तु जैसा कि हर विघटन एव विखण्डन के बाद कुछ नया निर्मित होता है, कुछ पुराना भी इधर-उधर पड़ा रह कर पुनः आकार लेना शुरू करता है, वैसा ही हमारी चेतना के क्षेत्र में भी हुआ।[1]

उपरोक्त मत को प्रो0 आशीष नन्दी ने भी औपनिवेशिक काल में भारतीय मनोविज्ञान को समझने के क्रम में पाया है।[2] भारत में औपनिवेशिक विचार एवं सस्कृति के साथ

अनेकों विदेशी अवधारणाएं हमारे ज्ञान एव चिन्तन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुईं। तार्किकता, परिपक्वता, साम्प्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता, पुरुषत्व की अवधारणा, प्रतियोगिता एव प्राप्ति की अवधारणा भारतीय मानसिकता में चेतन और अचेतन ढग से औपनिवेशिक हस्तक्षेप की उपज हैं।[3] हमारी देशज परम्परा में ये अवधारणाएँ नही थी। इनके तत्व थे भी तो वे भारतीय सस्कृति की सम्पूर्णता के ऐसे अंश के रुप में थे जिन्हें पृथक से एक सस्था या विचारधारा का रूप नही दिया जा सकता, जबकि उपरोक्त अवधारणाए एक वैचारिक तर्क के रूप में सम्पूर्ण पुनर्जागरणकालीन चेतना को प्रभावित करती रही। इन अवधारणाओं का हमारे सास्कृतिक व्यक्तित्व में आना अच्छा था या बुरा इस विवाद से यहाँ बचते हुए हम मात्र इतना आग्रह करना चाहेंगे कि इस कालखण्ड में हमारे शिक्षित भारतीय जन की मानसिकता का निर्माण औपनिवेशिक सास्कृतिक, बौद्धिक और दार्शनिक दबाव में हो रहा था। किन्तु भारतीय जनता के इस सवर्ग की दुविधा यह थी कि यह भारतीय परम्परा से भी जड़ से जुड़ा हुआ था। द्वितीय प्रकार की दुविधा जो इस वर्ग के साथ थी कि उसे जिस उपनिवेशवाद का विरोध करना था, उसी से कई तत्वों को ग्रहण करना था। अतः इसी प्रकार के वर्ग से जुड़े होने के कारण हिन्दी के तत्कालीन साहित्यकारों में भी यह दुविधा की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है।

औपनिवेशिक काल में राष्ट्र की अवधारणा और हिन्दी मन :

औपनिवेशिक काल के सम्पूर्ण इतिहास का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्र की अवधारणा निरन्तर निर्मिति एव विखण्डन की प्रक्रिया से गुजरती रही है।[4] कभी सम्पूर्ण राष्ट्र की व्यापक अवधारणा दिखायी पड़ती है। कभी क्षेत्र एव धर्म से राष्ट्र को सम्बद्ध कर उसे सीमित करने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है।[5] राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की व्यापकता एवं लघुता की ये दोनों संरचनाएं प्रायः सग-सग, कभी अलग भी दिखायी पड़ती है। जैसे-जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा

विखण्डित करने एव तत्कालीन मनोवैज्ञानिक कुण्ठा द्वारा स्वत: विखण्डित होने की प्रवृत्ति भी दिखायी पड़ती है। यह अनायास ही नही था कि 1890 ई0 के बाद आसाम के चाय बागान में जाने वाले श्रमिकों के विभिन्न वर्गों, भोजपुरी, छोटा नागपुरी, बगाली इत्यादि को अलग राष्ट्रीयता के रूप में औपनिवेशिक लेखकों द्वारा पारिभाषित किया जाने लगा। सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कई तरह की घटनाएँ इतिहास लेखन में अवधारणा का रूप ले चुकी हैं। यहाँ हम एक-एक कर हिन्दी के इन महान साहित्यकारों की रचनाओ में इन अवधारणाओं की उपस्थिति की प्रवृत्ति एव इन साहित्यकारों के चेतन व अचेतन में इन संघटनाओं के प्रति उनके दृष्टिकोण की एक समीक्षा प्रस्तावित करते हैं।

भारतेन्दु बाबू राष्ट्र की बृहत्तर अवधारणा के समर्थक थे। उन्होंने अपने बलिया सम्भाषण 'भारत की प्रगति कैसे हो ?' (1878) में भारतीय जनता की एकता पर बल दिया। उन्होंने हिन्दुओं से अपनी रुढ़ियों से मुक्त होकर, वैष्णव और शाक्त विवादों को छोड़कर, मुसलमानों को भी राष्ट्र की व्यापक धारणा में शामिलकर राष्ट्रीय समुदाय निर्मित करने का आह्वान किया। उन्होंने मुसलमानों से भी निवेदन किया कि वे विकास के मार्ग में हिन्दुओं के संग भाग लें। उन्होंने इस्लाम धर्म की रुढ़िविमुक्तता की चर्चा करते हुए कहा कि उन्हें अपने विकास के लिए हिन्दुओं से कम ही श्रम करना है।[6] उन्होंने उनसे अपनी राजनीतिक सर्वोच्चता की गर्वोक्ति को तजकर हिन्दुओं को बराबरी के स्तर पर समझने एव भाई जैसा व्यवहार करने का आग्रह किया।[7] उन्होंने इसके लिए एक मुहावरे का रचनात्मक उपयोग किया- जब घर में आग लगी हो तो घरेलू विवादों को अलग रख एक होकर आग बुझाने का प्रयास करना चाहिए।[8]

किन्तु राष्ट्र की निर्मिति की इस प्रकिया में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दुओं को सदैव एक ऐसे सवर्ग के रूप में देखते हैं जो राष्ट्रीय रहा है। इस स्थान से उन्होने मुसलमानों को सदैव वचित रखा। इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "राष्ट्र" में व्यापकता एवं सकीर्णता

का सम्मिश्रण दिखाई पडता है।[9]

प्रेमचन्द का राष्ट्र एक विकास की प्रक्रिया में निर्मित होता प्रतीत होता है। यह विकास 1917 से 1937 (गोदान एव मगलसूत्र) तक दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द्र की साहित्यिक रचनाओं में भारतीय राष्ट्रवाद के विभिन्न स्वरुप सुन्दर और कुरूप दोनों दिखायी पड़ते हैं। उनके भीतर उहा-पोह तब प्रारम्भ होती है जब वे आन्तरिक दमनकारियों की व्याख्या करते हैं।[10]

प्रेमचन्द का राष्ट्रवाद प्रारम्भ मे गाधीवादी राष्ट्रवाद से प्रभावित था। गाधी जी का ट्रस्टीशिप सिद्धात तथा हृदय परिवर्तन की प्राविधि ने उन्हें कही गहरे स्तर पर प्रभावित किया था।[11] उनकी कहानियों एव उपन्यासों में इस प्रकार तालस्तॉयवादी विकल्प दिखायी पड़ता है। जिसमें दमनकारी का हृदय परिवर्तित होता है और वह दमनग्रस्त के साथ भाईचारे का सम्बध स्थापित करता है। किन्तु उनके बाद के साहित्य में इस दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। अपने लेखने के परिपक्व काल तक आते-आते विशेषतः गोदान (1935) में यह अन्तर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगता है। गोदान में दयालु मालिक एवं क्रूर मालिक दोनों को एक ही प्रकार का शोषण करते दिखाया गया है। सिर्फ शोषण की प्राविधि में अन्तर है। एक-दया दिखा-दिखाकर मीठे ढग से शोषण करता है। दूसरा-अपनी क्रूरता से भयभीत कर शोषण करता है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि शोषक का चरित्र शोषक का ही होता है, दया एवं क्रूरता जैसी प्राविधियों से उसके मूल में परिवर्तन नही होता। इस प्रकार प्रेमचन्द यहाँ गांधीजी के हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त से मुक्त होते हैं और शोषक एव शोषित का राष्ट्रवाद स्थापित करते हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यास प्रेमाश्रम, रगभूमि, कायाकल्प (1926), कर्मभूमि तथा गोदान से राष्ट्र का एक वृहत्तर स्वरूप प्राप्त होता है। जिसमें किसान हैं, मजदूर हैं, मास्टर, वकील

इत्यादि मध्य वर्ग है, होरी एव धनिया है,[12] स्वतंत्रता सेनानी हैं। इस प्रकार यह राष्ट्रवाद अपनी परिधि से सिर्फ शोषकों, दलालों को निष्कासित करता है तथा ब्रितानी साम्राज्यवादियो के विरुद्ध एक व्यापक वर्ग की निर्मिति करता है। यह हिन्दुओं एव मुसलमानों की व्यापक एकता का पक्षधर है। किन्तु वे अपनी कृतियों-पूस की रात, कफन और गोदान में भारतीय समाज की विभाजित सच्चाई को भी दिखाने से मुह नही मोड़ते।

प्रेमचन्द के राष्ट्रवाद के मूल में एक जटिल वैचारिक सरचना कार्यरत थी, जिसके तीन मूल तत्व थे। प्रथम, व्यापक उदार एव जनतात्रिक भावना जो काग्रेस के विचार से प्रभावित थी। द्वितीय, स्वराज की वह भावना, जो निम्न वर्गीय जनता के स्वराज से जुड़ी हुई थी। जिसमें विद्यमान सामाजिक सम्बधों में आमूल परिवर्तन से कुछ भी कम प्राप्त करने की इच्छा नही थी। तृतीय, वह देशी रुमान की भावना थी जो पश्चिमी शासकों के जातीय एवं सास्कृतिक आतक का प्रतिरोध करती थी।[13]

राष्ट्र की यह अवधारणा यशपाल के साहित्य में ज्यादा वर्गीय, क्रान्तिकारी रुमान से परिपूर्ण एवं सघर्षगामी बनकर आता है। यशपाल के सपूर्ण साहित्य में उप निवेशवाद विरोधी वृहत्तर क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद परिलक्षित होता है, जिसमें सम्मिलित समुदायों में विभेद की चेतना सघर्ष के क्रम में विलुप्त दिखायी पड़ती है। सभी जन एक इकाई के रूप में दिखायी पड़ते हैं।

"साम्प्रदायिकता", जिसे डॉ0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय अपने नवीन शोध प्रबध में औपनिवेशिक ज्ञान का एक रूप कहते हैं, भारतीय इतिहास को एक औपनिवेशिक देन है। आधुनिक शोधकर्ता अवधारणा एवं संघटना दोनों रूपों में इसे औपनिवेशिक उत्पत्ति मानते हैं।[14] यह साम्प्रदायिकता की अवधारणा भी कही न कही राष्ट्र की व्यापक अवधारणा को विखण्डित कर रही थी। या यूं कहें, राष्ट्र की अवधारणा को विखण्डित करने वाले तकनीकों में

'साम्प्रदायिकता' सर्वाधिक सशक्त तकनीक थी। इसी साम्प्रदायिकता की उत्तरकालीन उत्पत्ति हिन्दू राष्ट्रवाद, मुस्लिम राष्ट्रवाद के रूप में परिलक्षित होती है।

इस सघटना को हिन्दी साहित्यकारो ने कैसे ग्रहण किया ? इसके साथ औपनिवेशिक काल में उनका सम्बध कैसा बना ? ये प्रश्न विचारणीय हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बलिया में दिए गए अपने सम्भाषण 'भारत की प्रगति कैसे हो ?' (1878 ई0) में देश के अध· पतन की ओर सकेत करते हुए लोगों के मध्य एकता पर बल दिया। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं से अपनी सकीर्णताओं से मुक्त होकर शैव- वैष्णव जैसे विवादों से ऊपर उठने का आग्रह किया, वही उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थापित कर एक राष्ट्रीय समुदाय के निर्माण का आह्वान किया।[15] उन्होंने मुसलमानों से भी आग्रह किया कि वे आयें और विकास की धारा में हिन्दुओं के साथ जुड़ जाए। उन्होने मुस्लिम समुदाय जो अपनी राजनीतिक सर्वोच्चता समाप्त हो जाने के कारण एक विशेष प्रकार की कुण्ठा में जी रहा था से आग्रह करते हुए कहा कि 'यह उचित है कि हमारे मुस्लिम भाई हिन्दुओं को नीची दृष्टि से देखना बन्द करें।' उन्हें हिन्दुओं को अपने भाई के रूप में समझना चाहिए और ऐसे कार्य नही करना चाहिए जिससे हिन्दुओं को कष्ट हो। जब घर में आग लगी हो तो घरेलू विवादों से मुक्त होकर आग का सामना करने चाहिए।[16]

उपरोक्त वक्तव्यों से इस तत्कालीन सघटना के प्रति भारतेन्दु बाबू की सम्वेदनशीलता, गभीरता एव इससे टकराने के उपाय खोजने की चेष्टा तो प्रकट होती है किन्तु अत्यन्त गहराई में जाने पर यह स्पष्ट होता है कि इस प्रतिनिधि हिन्दी मानसिकता में 'हिन्दू' को एक ऐसा सवर्ग माना गया है, जो सदैव देश से जुड़ता है।[17]

भारतेन्दु बाबू भारतीय राष्ट्र की वृहत्ततर एवं लघु अवधारणाओं के सम्मिश्रण को साथ लेकर चल रहे थे। इसे 'वृत्त के भीतर वृत्त' के रूप में समझा जा सकता है। 'बलिया

वक्तव्य' के पूर्व भारतेन्दु बाबू राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते रहे हैं। 'एकता के आह्वान के पूर्व' उन्होंने हिन्दुओं एव मुसलमानों के मध्य आपसी समझ विकसित करने पर बल दिया। उन्होंने स्वय भी इस दिशा में योगदान दिया। उन्होंने 1875 ई0 में कुरान के कुछ भाग का हिन्दी में अनुवाद किया। उन्होंने मुहम्मद साहब, फातिमा, अली हुसैन और हसन (1884 ई0) की जीवनिया लिखी। इसका उद्देश्य इस्लाम धर्म के प्रति आदर की भावना का विकास भी था। 1876-77 ई0 में उन्होंने वैष्णव सन्तों पर एक लम्बी कविता लिखी जिसमें उन्होंने कवीर, रसखान, तानसेन और पीरजादी बीबी को अन्यतम महत्व दिया और कहा "करोड़ों हिन्दू जन मुस्लिम सन्तों के लिए न्यौछावर हो सकते थे।"

किन्तु यह भारतेन्दु बाबू की चेतना का एक पक्ष था। उनकी चेतना में दूसरा पक्ष भी था, जो उनके मुगल शासन की व्याख्या में दिखायी पड़ता है। 1875 ई0 में प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर उन्होने एक कविता लिखी जिसमें उन्होंने ब्रितानियों द्वारा मुगल शासन के अन्त को शताब्दियों से चली आ रही दमन के युग की समाप्ति के रूप में देखा। इसी कविता में उन्होंने बनारस के विश्वनाथ मदिर के बगल में मस्जिद बनने पर व्यंग भी किया।

मस्जिद लखि विसुनाथ धीग
पारे हिय जो धाव।[18]

उन्होनें आगे पुनः लिखा-

"जहँा बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर
वहँा मस्जिद बन गए होतबा अल्ला-अकबर।।[19]

इसे भारतेन्दु बाबू जैसे बनारस में रहने वाले एक पारम्परिक हिन्दू के 'घाव के एहसास' के रूप में भी देखा जा सकता है।[20]

1877 ई0 में प्रकाशित भारतेन्दु बाबू की एक कविता में पृथ्वीराज के पराजय के बाद भारत मे स्थापित मुस्लिम शासन को हिन्दुओं को अनेक प्रकार से तग करने वाले, धन एव धर्म का नाश करने वाले के रूप में देखा गया है। इसी वर्ष में प्रकाशित दूसरी कविता में मुसलमानों को मात्र एक शासक के रूप में नही, बल्कि धन, धर्म एव स्त्री का हरण करने वाले के रूप में देखा गया है।[21]

इसी चेतना का प्रसार 1884 ई0 में लिखित उनकी कविता 'बादशाह दर्पण' में दिखायी पड़ता है। जिसमें 'उस पगले हाथी का (मुस्लिम शासक) वर्णन है जिसने 'खिल रहे गुलाबों के बाग को बर्बाद कर दिया।' इसमें महमूद अलाउद्दीन, औरगजेब, और अकबर को हाथी के रूप में रुपायित किया गया है। इसमें भारतेन्दु बाबू का कहना है कि वह अकबर एक तीव्र बुद्धि वाला दुश्मन था। उसकी चालाकी के कारण हम उसे मित्र समझते रहे हैं। पर वह ऐसा नहीं था। उसकी नीति अग्रेजों की तरह ही गहरी मारक क्षमता वाली थी।[22] यहाँ भारतेन्दु बाबू अकबर के मिथक या बनी बनायी तस्वीर को विरचित भी करते हैं। 1872-75 ई0 के मध्य प्रकाशित एक लेख में भारतेन्दु बाबू 'अकबर की प्रबुद्धता' के काले पक्ष को उभारने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार मुसलमानों के प्रति पुनर्जागरण कालीन शिक्षित मध्य वर्गीय हिन्दी मानसिकता में दो विरोधी दृष्टिकोण एक ही साथ दिखायी पड़ते है। यह तत्कालीन नवशिक्षित मध्य वर्ग का अन्तर्द्वन्द्व था। यह इतिहास के बारे मे तत्कालीन समय के दबाव के कारण भी हो सकता है।

प्रेमचन्द बाद के समय की उपज थे। उन्होंने ज्यादा वैज्ञानिक ढग से 'हिन्दू-मुस्लिम समस्या' को देखा। इस सघटना के प्रति उनके दृष्टिकोण के अत्यधिक वैज्ञानिक होने के कारणों में तत्कालीन समय की ऐतिहासिक परिपक्वता, उनके व्यक्तित्व की सरचना (उनका उर्दू से सम्बध) तथा तत्कालीन राजनीतिक सस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। उनमें यह वैज्ञानिकता प्रारम्भ से ही नही थी बल्कि एक विकास की प्रकिया से होकर उपजी थी। यह विकास की प्रक्रिया आर्य समाज से प्रारम्भ होकर गाधीवादी मार्ग से यात्रा तय करते हुए समाजवादी विचार दृष्टि तक पहुचती है। अत· इस वैज्ञानिकता के बावजूद उनमें भी तत्कालीन राष्ट्रवाद का अन्तर्विरोध थोड़ा-बहुत दिखायी पड़ता है। मुस्लिम समुदाय के प्रति प्रेमचन्द्र के दृष्टिकोण में अनैरन्तर्य दिखायी पड़ता है। जहा वे भारतीय स्वतत्रता संग्राम में मुसलमानों को एक महत्वपूर्ण तत्व मानते हुए आदर प्रकट करते हैं वही वे हिन्दुओं से यह आग्रह करते हैं कि अल्पसख्यक समुदाय का समर्थन लेने के लिए थोड़ा त्याग करें।[23]

उनमें भी जहाँ पश्चिमी प्रभाव का सामना करने का प्रश्न उठता है, वहाँ हिन्दू सस्कृति की प्रवृत्तियों को ही प्रतिदर्श के रूप में सामने रखने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है। वे हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर विचार करते हुए 1925 ई0 में स्वामी श्रद्धानन्द की पुस्तक जिसमें हिन्दू मुसलमान के सघर्ष का इतिहास लिखा गया था की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि "साम्प्रदायिक और पन्थ केन्द्रित सघर्ष हमारे भारतीय इतिहास में प्राय. होते रहे हैं। यह हिन्दूओं, जैनों, बुद्धवादियों के सघर्ष के रूप में भी अभिव्यक्त होता रहा है। यह समय सघर्ष की लम्बी परम्परा को भूल जाने का है और अतीत के उस उपयोग से बचने का है जो धार्मिक विद्वेष पैदा करे"।[24] इसी सन्दर्भ में वे 1933 ई0 में आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक 'इस्लाम का विष वृक्ष' जिसमें मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दुओं पर दमन की रचनात्मक प्रस्तुती की गयी है, पर विचार करते हुए लिखते हैं कि - सभी धर्म जब अपने उत्थान पर रहे हैं तो दमन के दोषी रहे हैं। भूत की स्मृतियों का लोगों के मध्य

घृणा फैलाने के लिए किया जाने वाला उपयोग देश को बर्बादी की तरफ ले जाएगा।[25] 1936 ई0 में एक मुस्लिम लेखक की वे इसलिए आलोचना करते हैं कि उसने अपनी रचना में सिर्फ मुस्लिम समुदाय का आह्वान किया है।[26] इस प्रकार यह आक्रमण उनका वृहत्त राष्ट्रवाद का खण्डन करने वाली प्रवृत्तियों पर था, जो उसे लघु बना रही थी। इस प्रकार उन्होंने एकता के लिए इतिहास के तथ्यों का दमन करने एव उन्हें एकता के लिए उपयोग करने में भी हिचक नही दिखायी।[27] यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने भूत के विश्लेषण में वर्तमान का हमेशा ध्यान दिया क्योंकि भूत हमारे वर्तमान को प्रभावित करता है।

इसी श्रृखला में यशपाल का अध्ययन भी आवश्यक है। यशपाल का राष्ट्रवाद प्रेमचन्द के राष्ट्रवाद का ही विकासमान रूप था। ज्ञातव्य है कि यशपाल स्वय भी राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन से जुड़े हुए थे। वे भारतीय राष्ट्रवाद के अन्त.गामी सक्रिय चेतना के प्रतिनिधि तत्व थे। उनका जन्म 1904 ई0 में उस समय हुआ था, जब राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन ने, जिसे प्रायः आतकवादी आन्दोलन कहा जाता है, भारत में सगठित रूप धारण कर लिया था। उल्लेखनीय है कि जब वे सक्रिय होकर इस आन्दोलन में आये, इसमें गुणात्मक परिवर्तन होने लगे थे। अतः यशपाल का राष्ट्रीय दृष्टिकोण 1904-1910 ई0 के राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों के दृष्टिकोण से बहुत भिन्न था। जब वे 1938 में जेल से छूटकर बाहर आये तब तक राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की धारा समाप्त हो चुकी थी और अधिकांश क्रान्तिकारी पहले के आन्दोलन से कही सशक्त समाजवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन की धारा में 'सम्मिलित हो गये थे।[28] यशपाल भी क्रान्तिकारी आन्दोलन की इस नवीन धारा में सम्मिलित हुए, लेकिन एक राजनीतिक नेता के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त लेखक के रूप में।[29] इस प्रकार यशपाल की वैचारिक सरचना एव मनोविज्ञान में समाजवादी दर्शन एक प्रमुख तत्व के रूप में आया। इस समाजवादी दर्शन ने यशपाल को राष्ट्र, राष्ट्रवाद एव राष्ट्रीय व्यक्ति के सम्बधों में एक

विकसित सुसगठित तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया। किन्तु यशपाल की वैचारिक सरचना में तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है, जो उनके मनोविज्ञान का निर्माण कर रही थी। 1905 का बगभग, 1908 का तिलक को छः वर्ष का कारावास, 1910 के आसपास विकसित एव सगठित क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रतिनिधि सगठन 'अनुशीलन' समिति और 'युगान्तर' का प्रभाव, 1922 के बाद का अत्यधिक सुचिंतित आतकवाद, हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन की स्थापना, 8 अप्रैल, 1929 ई0 को केन्द्रीय विधान सभा में बम फेकने की घटना तथा भगत सिंह एव राजगुरू को फासी इत्यादि ऐसी ऐतिहासिक घटनाएं थीं, जिन्होंने यशपाल की राष्ट्रवादी विचारधारा में जुड़ाव का गहरा स्वर एव अन्तःध्वनि उत्पन्न किया था।

यशपाल गाधीवादी राष्ट्रवाद के प्रतिदर्श के विरोधी थे। अतः उनके राष्ट्रवाद में, देश, धर्म, हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध के बारे में इनसे भिन्न दृष्टि कोण था। हालाकि उन पर आर्य समाज का भी प्रभाव था, क्योंकि बचपन में उनकी शिक्षा-दीक्षा आर्य समाजी प्रभाव में हुई थी।[30] किन्तु आर्यसमाजी से काग्रेसी, काग्रेसी से राष्ट्रवादी, क्रान्तिकारी और समाजवादी क्रान्तिकारी तक उनकी विचार यात्रा ने उनके दृष्टिकोण में सम्प्रदाय को रहने ही नही दिया था। उन्हें 1930 ई0 में कर्तार सिंह के नाम से प्रकाशित 'बम का दर्शन' ज्यादा प्रभावित करता था।[31]

यशपाल की साहित्यिक कृतियों के अवगाहन से उनके 'देश' का जो स्वरुप उभरता है, वह उबलता हुआ, सशस्त्र सघर्ष से मुक्ति की कामना करता हुआ देश है। किन्तु यह उबाल सुचिन्तित, सुविचारित एवं दर्शन से युक्त था। यह क्षणिक उबाल नही था। उनके देश की अवधारणा गांधीवादी अवधारणा से भिन्न थी, जो गाधीवाद से उनके मोह भग का उत्पादन थी। वे स्वय कहते हैं " गाधीवादी आन्दोलन में भरोसा न कर सकना ही क्रान्तिकारियों को सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्नों की ओर ले जा रहा था।"[32] हिन्दू मुस्लिम एकता के वे

प्रबल समर्थक थे। उनकी राष्ट्रवादी अवधारणा में हिन्दू मुस्लिम में भेद नही दिखाई देता। ये दोनों इकाइयाँ एक पूर्ण इकाई में समाहित दिखायी देती है। इस प्रकार उनका राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद विरोधी वृहत्तर क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद था, जो वैज्ञानिकता से युक्त था।

फुट नोट्स-

1. विस्तृत व्याख्या के लिए ए.के सरन का निबन्ध- वेस्टर्न इम्पैक्ट ऑन इण्डियन वैल्यूज, (रोमेश थापर द्वारा सम्पादित ट्राइव कास्ट एण्ड रिलीजन इन इण्डिया में सकलित, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड द्वारा, रिप्रिन्टेड, 1983

2. आशीष नन्दी, द इन्टिमेट इनेमी, लॉस एण्ड रिकॉवरी ऑफ सेल्फ अन्डर कॉलोनियलिज्म, (ओ.यू.पी. 1991)

3 वही

4. सुधीर चन्द्र, द ऑप्रिसिव प्रेजेन्ट, लिट्रेचर एन्ड सोशल कॉन्शसनेस इन कॉलोनियल इण्डिया, (ओ.यू.पी.) 1990, पृष्ठ 116

5 वही, पृष्ठ 117

6. वही, पृष्ठ 118

7 वही, पृष्ठ 116

8. भारतेन्दु ग्रन्थावलि, 111, 901-902

9. सुधीर चन्द्र, द ऑप्रिसिव प्रेजेन्ट, लिट्रेचर एन्ड सोशल कॉन्शसनेस इन कॉलोनियल इण्डिया, (ओ.यू.पी. 1992), पृष्ठ 127

10. गीताजलि पाण्डेय, बिटविन टू वर्ल्डस, एन इन्टेलेक्युअल बॉयोग्राफि ऑफ प्रेमचन्द्र, मनोहर प्रकाशन नयी दिल्ली, 1989, पृष्ठ-46

11. गीताजलि पाण्डेय, बिटविन टू वर्ल्डस, एन इन्टेलेक्युअल बॉयोग्राफि ऑफ प्रेमचन्द्र, मनोहर प्रकाशन नयी दिल्ली, 1989, पृष्ठ-46

12 प्रेमचन्द्र के उपन्यास गोदान के दो प्रतिनिधि चरित्र, जो सपूर्ण प्रेमचन्द्र साहित्य के प्रतिनिधि चरित्र बन गए

13. गीताजलि पाण्डेय, बिटविन टू वर्ल्डस, एन इन्टेलेक्युअल बॉयोग्राफि ऑफ प्रेमचन्द्र, मनोहर प्रकाशन नयी दिल्ली, 1989, पृष्ठ-86

14. प्रो0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, कन्स्ट्रकशन ऑफ कम्युनलिज्म इन कॉलोनियल इन्डिया (ओ.यू पी 1990), पृष्ठ -6

15. सुधीर चन्द्र, द ऑप्रिसिव प्रेजेन्ट, लिट्रेचर एन्ड सोशल कॉन्शसनेस इन कॉलोनियल, इण्डिया, (ओ यू पी 1992), पृष्ठ 117

16. भारतेन्दु ग्रन्थावलि 111, पृष्ठ- 901-902

17. वही, पृष्ठ- वही

18. भारतेन्दु ग्रन्थावली ॥, पृष्ठ- 699

19. वही, पृष्ठ- 684

20. सुधीर चन्द्र, द ऑप्रिसिव प्रेजेन्ट, लिट्रेचर एन्ड सोशल कॉन्शसनेस इन कॉलोनियल, इण्डिया, पृष्ठ 120

21. भारतेन्दु ग्रन्थावली ॥, पृष्ठ- 764

22. वही, पृष्ठ- 315-316

23. गीताजलि पाण्डेय, बिटविन टू वर्ल्डस, एन इन्टेलेक्युअल बॉयोग्राफि ऑफ प्रेमचन्द्र, मनोहर प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ- 186

24 वही, पृष्ठ- वही

25. वही, पृष्ठ- वही

26. वही, पृष्ठ- वही

27 वही, पृष्ठ- 187

28 अयोध्या सिंह, क्रान्तिकारी यशपाल, कथा- 5, 1992, पृष्ठ-92

29 वही, पृष्ठ- वही

30 वही, पृष्ठ- 96

31 वही, पृष्ठ- 94

32 यशपाल, सिंहावलोकन, भाग 1, पृष्ठ- 14

तृतीय अध्याय

इतिहास लेखन और लोक संस्कृति

इतिहास लेखन में लोक सस्कृति और लोक सस्कृति मे इतिहास लेखन का प्रवेश क्यों और कैसे हुआ, यह एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण का प्रश्न है। वस्तुतः अठारहवी शताब्दी के अन्त और उन्नीसवी सदी के आरम्भ में जब व्यापारी, मशीनी एव पूजीवादी सभ्यता में 'आदमी', 'जन' का लोप होने लगा तो यूरोप के बौद्धिकों मे 'जन को खोजने का रुझान बढ़ा।' इस 'लोप हो रहे जन' की खोज के लिए उन्होने सर्वप्रथम उसकी पारम्परिक लोकप्रिय सस्कृति को खोजने का अभियान चलाया जो इस सभ्यता मे लुप्त हो रही थी।

यूरोप के इस बौद्धिक वर्ग के पास इस समय तक 'लोक की अवधारणा' नही थी। उसने धीरे-धीरे लोक की सुगठित अवधारणा का विकास किया। लोकप्रिय सस्कृति की अवधारणा के गठन की प्रक्रिया शोधपूर्ण किन्तु उत्सुकता से भरी हुई है। 1874 ई0 में जे0 जी0 हर्डर ने "फॉक स्लाइड" (VOLKSLIED) अर्थात् फॉक सॉग (लोक गीत) का प्रचलन किया।[1] अठारहवी शताब्दी के अन्त में लोक कथाओं के ही अर्थ में पर उससे थोड़ा भिन्न "फॉक साज" (VOLK SAGE) शब्द का जन्म हुआ। उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ में जोसेफ गोरेस नामक पत्रकार ने फॉक बक (VOLKS BUCH) नामक शब्द इसके लिए प्रचलित किया। 1846 ई0 में अग्रेजी में फॉक लोर शब्द का प्रचलन हुआ। 1850 ई0 में "फॉक कॉस पील (VALKS SCHAS PIEL) शब्द इसके लिए प्रयुक्त होने लगा। विभिन्न यूरोपीय देशों में इसी तरह की शब्दावलियाँ प्रयुक्त होने लगी। स्वीडीश में फॉक वाइजर, इटालियान मे कैन्टी पोप लरी (CANTI POPLARI), रूसी भाषा में नरोद्नी पेसनी (NARODNY PESNI), हगरी में नेपदा लोक (NEPDALOK) का व्यवहार होने लगा।[2]

वस्तुत जे0 जी0 हर्डर ने ने ही लोकप्रिय सस्कृति - कल्चर-डेस-फाक्स (KULTUR-DES-VOLKES), का प्रयोग शिक्षित सस्कृति (LEARNED CULTURE) के विरोधाभास मे किया। इस बौद्धिक वर्ग ने 'जनता की लोकप्रिय सस्कृति' के सकलन का महत्वपूर्ण कार्य किया। यूरोप में लोकप्रिय सस्कृति के प्रमुख सिद्धान्तकार जे0 जी0 हर्डर ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि पुनर्जागरण के बाद के विश्व में पुरानी कविता का नैतिक प्रभाव लोकगीत में ही सुरक्षित है।[3] इसके दूसरे बड़े सिद्धान्तकार ग्रीम ने 'लोक प्रिय' सस्कृति की सामुदायिकता के सिद्धान्त को स्थापित किया। इन दोनों के प्रभाव में यूरोप में राष्ट्रीय लोक गीतों के सकलन पर सकलन निकलने लगे।

"कृषा दानिलोव (KRISHA DANILOV), के सम्पादन मे रूसी बाइलिनी (BYLINY) और ब्लाड्स 1804 में प्रकाशित हुआ। आर्निम ब्रेटानों के प्रयासों से जर्मनी के लोक गीतों का सकलन किया गया। और 1804-1806 ई0 के आस-पास यह डेस केनाबेन वुन्डर बॉर्न (DES KENA BEN WUNDER BORN), के नाम से प्रकाशित हुआ।[4]

भारत में इसका सकलन दो प्रवृत्तियों के कारण हुआ। भारत में कार्यरत औपनिवेशिक अधिकारियों ने शासित को जानने, समझने के उद्देश्य से इसका सकलन किया।[5] बीसवी शताब्दी में कुछ राष्ट्रवादी कवियों ने अपनी सस्कृति को गौरव मण्डित करने के लिए लोक सस्कृति से सहारा लेने हेतु इसका सकलन किया।[6] बाद में चलकर लोक संस्कृति विद प0 कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक सस्कृति के सकलन एवं लोक परंपरा के अध्ययन का प्रयास किया।[7]

किन्तु लोक संस्कृति के ये देशी एवं विदेशी दोनो प्रकार के विद्वानों एवं कार्यकर्ताओं ने मात्र 'लोकप्रिय संस्कृति' के सकलन का कार्य किया। विश्लेषण का कार्य नही किया। लोक संस्कृति की इन विभिन्न विधाओं के भीतर क्या है ? शब्द के बाद की दुनिया अदृश्य रह

गयी। इस प्रकार लोक संस्कृति के प्रति इनकी रुचि रोमानी एव बौद्धिकों की भावमयी राष्ट्रवादी अभिरुचि बनकर रह गयी। इनसे किसी बड़े ऐतिहासिक सत्य तक पहुचने का इन्होने प्रयास नही किया।

लोक सस्कृति के विदेशी विद्वानों के बीच इनकी उपयोगी व्याख्या कर अपने नये क्रिश्चियन मूल्यो को आदिम मूल्यों से जोड़ने का प्रयास भी हुआ। किन्तु भारतीय विद्वानों के मध्य तो यह भी नही हुआ।

किन्तु लोक सस्कति के कार्यकर्ताओं ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने इतिहासकारों और समाज वैज्ञानिकों के अध्ययन के लिए सामग्री उपलब्ध करा दी। जबकि यह सार सकलन लोक सस्कृति के विशाल समुद्र का मात्र एक बूद भर था। किन्तु फिर भी इससे इतिहासकारों का ध्यान उस ओर जा सका।

लोक सस्कृति वादियों की तरह यूरोप के इतिहासकारों ने भी व्यावसायिक एव औद्योगिक विकास में क्षय होते जा रहे 'आदमी', 'जन', उसकी लोकप्रिय सस्कृति तथा परम्परा की खोज आरम्भ की। स्वीडीश इतिहासकार एरिक गुस्ताव गीजर (ERIK GLUSTAV GIZERBR), ने लोकप्रिय कविताओं को लेकर इतिहास लेखन प्रारम्भ किया। उसने लोक प्रिय सस्कृति को जन इतिहास रचने में महत्वपूर्ण बताया। क्योंकि इसे पूरा जन एक आदमी के रूप में गाता है। 'सरकार का इतिहास' रचने की प्रवृत्ति से पृथक होकर 'एरिक गीजर' ने 'जन इतिहास' रचने की दिशा में प्रवृत्त होते हुए 'दि हिस्ट्री ऑफ दि स्वीडिश पीपुल' की रचना की। जबकि इसने अपनी पुस्तक का ज्यादा स्थान राजा की नीतियों का मूल्यांकन करने में गॅवाया किन्तु इसने इसमें एक अलग अध्याय 'भूमि और लोग' की रचना की। यह उस समय के इतिहास लेखन मे एक महत्वपूर्ण कार्य था। लोक गीतों एव लोक सस्कृति को शोध सामग्री के रूप मे प्रयोग करते हुए ठीक इसी तरह का

शोध कार्य कर चेक इतिहासकार फ्रैन्टिस्क पलाकी (FRANTISHEK PALLACKY) ने 'हिस्ट्री ऑफ द चेक पीपुल' की रचना की। जुलियस मिकलेट (JULES MICHLET) जो स्वय लोक सस्कृति के सकलन का कार्य करता था, की पुस्तक हिस्ट्री ऑफ द इगलैण्ड 1848 ई0 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का तीसरा अध्याय अत्यत प्रसिद्ध हुआ, जो 17वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के इगलैण्ड को विषय बनाकर लिखा गया था। यह अध्याय लोक प्रिय बैलेडों पर आधारित था, जिसका उसने सकलन किया था।[9]

यूरोपीय इतिहासकारों की अभिरुचि लोकसस्कृति की ओर उनमे निहित राष्ट्रवादी भावनाओं के कारण भी हुआ। राष्ट्रवाद को एक सास्कृतिक अवधारणा के रुप में देखते हुए इन्होंने अपनी राष्ट्रीयता की लोक सस्कृति को इतिहास का विषय बनाया।

सचमुच लोक सस्कृति के राष्ट्रवाद के विकास से जुडाव ने भी इतिहासकारों के मध्य इसे आकर्षण का केन्द्र बनाया। लोक गीतों के सकलन प्राय अपनी भावना एव प्रेरणा में राष्ट्रवादी भावों से भरे थे।

यूरोप में लोक सस्कृति के निर्धारण् की प्रक्रिया आत्मनिर्धारण के आन्दोलन एव राष्ट्रीय मुक्ति से जुडी रही है। इस प्रवृत्ति ने भी यूरोप के इनिहासकारों के मध्य इसे अध्ययन का विषय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। फॉरिल (FARIEL) का ग्रीक लोक गीतों का सकलन 1829 ई0 में तुर्क के खिलाफ ग्रीक विद्रोह से प्रभावित था।[10]

शीघ्र ही नवीन एवं प्रसिद्ध इतिहासकार इवजिन वेबर ने फ्रास के किसानों की अन्तःदुनिया में प्रवेश के लिए लोक सस्कृति के विभिन्न उपादानों को आवश्यक मानते हुए अपना अत्यन्त विद्वतापूर्ण शोध प्रबध 'पिजेन्ट इन फ्रेन्च मेन'प्रस्तुत किया है।[11]

यूँ भी लोक सस्कृति एक ऐतिहासिक सघटना है और लोक सम्कृति का विज्ञान एक ऐतिहासिक अनुशासन है।[12]

प्रसिद्ध सामाजिक इतिहासकार ई० पी० थॉम्पसन ने अपने एक अत्यन्त विद्वतापूर्ण लेख "फॉकलोर, एथ्रोपोलॉजी एण्ड सोशल हिस्ट्री" में इन तीनों के अन्तः सम्बध एव अन्तः सवाद की व्याख्या करते हुए यूरोप के इतिहास में इनकी उन्नति के सकारात्मक स्वरुप एव सीमाए स्पष्ट करते हुए भारत में इसकी आवश्यकता पर बल दिया है।[13]

एक ओर यूरोप मे इतिहास लेखन में लोक सस्कृति का इतना व्यापक प्रयोग हुआ है, वही भारत मे इस दिशा में पहल न के बराबर हुई है।

आधुनिक भारत के इतिहास के निर्माण एव पुनर्निर्माण के लिए विभिन्न प्रयास किए गए हैं एव अनवरत किये जा रहे हैं। इन प्रयासों के परिणामस्वरुप भारतीय इतिहास लेखन में विभिन्न पद्धतियाँ, दृष्टिकोण एव मत विकसित हुए हैं। भारतीय इतिहास लेखन के इन विभिन्न वैचारिक सवर्गों के इतिहास लेखन में 'जन' के लोकप्रिय सस्कृति का कितना स्थान रहा है ? उन्होने इसे कैसे ओर कितना देखा है ?

आधुनिक भारत के इतिहास के निर्माण का प्राथमिक प्रयास औपनिवेशिक विद्वानों एव प्रशासको लॉर्ड डफरिन, कर्जन और मिन्टो जैसे वायसरायों और भारत सचिव लॉर्ड हैमिल्टन की राजकीय घोषणा पत्रों के रूप में, बी. चिरोल रौलेट (राजद्रोह) समिति की रिपोर्ट, वर्नी लोवेट और माटेग्यू चेम्सफोर्ड की तर्क संगत प्रस्तुतियों एव इसी पवृत्ति का विकास करते हुए पर्सिवल स्पीयर ने भारत के इतिहास की रचना की। इस ऐतिहासिक पद्धति एव दृष्टिकोण को नया रूप देकर अनील सील[14] जे० बुमफील्ड, जे० ए० कैलाधर[15] इत्यादि ने भारत के इतिहास का निर्माण का जो प्रयास किया है, उनमें लोक

सस्कृति के बारे में न कोई समझ है और न ही आधुनिक भारतीय इतिहास में गहराई की प्राप्ति के लिए लोक सस्कृति तक पहुचने का कोई प्रयास।

आधुनिक भारत के इतिहास के निर्माण एव पुनर्निर्माण का दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास जिस वैचारिक संवर्ग द्वारा किया गया है उसे इतिहास के साहित्य में राष्ट्रवादी इतिहास दर्शन से सम्बोधित किया गया है। उपनिवेशवादी युग में लाला लाजपतराय, ए0 सी0 मजुमदार, आर0 जी0 प्रधान पट्टाभि सीतारमैया, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सी0 एफ0 एन्ड्रयूज और गिरिजा मुखर्जी जैसे विद्वान एव हाल में बी0 आर0 नन्दा, विशेश्वर प्रसाद और अमलेश त्रिपाठी के शोधकार्य आधुनिक भारत के राष्ट्रवादी इतिहास का दावा प्रस्तुत करते हैं लेकिन आश्चर्य यह है कि अपने को राष्ट्रवादी इतिहास का प्रमाणिक प्रतिनिधि मानने वाले इन विद्वानों के कार्यों में भी लोक, लोकसस्कृति, जन और जन की सस्कृति से कोई लेना-देना नही है। यह कैसा राष्ट्रवादी इतिहास है, जिसमें "राष्ट्र" ही नही है।

अब मार्क्सवादी इतिहासकारो के कार्यों का मूल्याकन 'जन', के 'लोक' के इतिहास रचने एव इतिहास लेखन में लोकप्रिय सस्कृति के उपयोग के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए।

मार्क्सवादी विद्वानों में आधुनिक भारत के इतिहास की निर्माण की नीव रजनीपाम दत्त एवं ए0 आर0 देसाई ने रखी। इस इतिहास लेखन का विकास बाद के काल में प्रो0 विपिन चन्द्र ने मुख्य रूप से किया।[16] इस श्रृखला को अग्रगति देने में के0 एन0 पनिक्कर, आर0 एल0 शुक्ल, सुनील सेन का प्रमुख योगदान रहा। इतिहास के इन सशोधन कर्ताओं ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए। इन्होंने औपनिवेशिक भारत के मुख्य अन्तर्विरोध एव रुपाकार ग्रहण कर रहे राष्ट्रवाद की प्रक्रिया को ध्यान में रखा। मार्क्सवादी इतिहास लेखन में कुछ नया एव मौलिक कार्य करने वाले प्रो0 विपन चन्द्र एव उनके मत के अन्य इतिहासकारों ने

राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता, उपनिवेशवाद एव भारत का स्वतत्रता सग्राम पर कई महत्वपूर्ण कार्य प्रस्तुत किए। इन्होंने भारत के स्वतत्रता सघर्ष का इतिहास रचने के लिए स्वतत्रता सेनानियों के साक्षात्कार का सहारा लेने का भी प्रयास किया है। किन्तु दुख एव निराशा होती है कि इतिहास लेखन के श्रोत सामग्री के रूप मे एव एक दृष्टि के रूप में भी न ही इन्होंने लोक सस्कृति की ओर देखने का प्रयास किया न ही इनकी पहुच वहॉ तक हो पायी।

इन दिनों भारतीय इतिहास लेखन में एक नयी प्रवृत्ति दिखायी पड़ रही है।[17] इसके प्रस्तावकों ने इसका नाम 'उपाश्रयी अध्ययन' रखा है। इस इतिहास दर्शन में पुराने, सीमित दृष्टि वाले इतिहास दर्शन की जगह, उसको स्थापित करने की बात कही गयी है जो नयी, जनोन्मुखी या उपाश्रयी दृष्टि है। इस 'इतिहास लेखन सवर्ग' ने आधुनिक भारत के इतिहास को अत्यत धनी बनाया है। विशेषकर क्षेत्रीय आन्दोलनों और कृषक एव मजदूरों के आन्दोलनों का व्यापक स्तर पर अध्ययन कर इन्होने भारत में सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन को प्रोत्साहित किया है जो अब तक के निर्मित राष्ट्रवाद के ढॉचे को तोड़ने में सहायक हुआ है। किन्तु कुछेक इतिहासकारों का इन पर लगाया जाने वाला यह आरोप विचारणीय है कि "इस नए सम्प्रदाय ने जनचेतना को केन्द्र मे रखकर इतिहास लेखन का वायदा किया था, लेकिन इसने अपने लिए कोई नया श्रोत नही तलाशा है। जिससे इनकी लोकप्रिय कल्पना को विचार शीलता मिल सके। इनके नए लेखन का आधार अभी भी वही पुराने अभिजन श्रोत हैं।[18]

किन्तु इसी वैचारिक सवर्ग के डेविड हार्डीमैन का "देवी आन्दोलन"[19] जिसमें उन्होंने मौखिक इतिहास लेखन की तकनीकों को अपनाया है एव ज्ञानेन्द्र पाण्डेय का 'दि असेन्डेन्सी ऑफ कॉग्रेस इन यू0 पी0' 'दि स्टडी ऑफ इम्प्रफेक्ट मोबेलाइजेसन'[20] में नये श्रोतों की ओर जाने का प्रयास दिखता है। किन्तु अपने इतिहास लेखन के सम्पूर्ण दर्शन में

लोकप्रिय सस्कृति की आवश्यकता महसूस करते हुए भी आज तक ये इतिहासकार भारत में इतिहास लेखन के इस अजस्त्र एव अचूक भण्डार का उपयोग क्यो नही कर पाये ? सभवत: निम्न वर्ग एव सामान्य जन से इनकी व्यावहारिक दूरी इसमें महत्वपूर्ण कारण रही हो। हमारी दृष्टि में इस दूरी को बनाए रखने में इनका लोक भाषाओं का ज्ञान सीमित होना, लोक संस्कृति से कोई अन्त: सम्बन्ध न होना एव कमोवेश इनके भीतर का आभिजात्य एव असुविधा से बचने की मध्यवर्गीय इच्छा ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

ऐसा नही है कि भारतीय इतिहासकारों के मध्य इतिहास के सन्दर्भ में लोक सस्कृति का महत्व न समझा जा रहा हो। प्रो0 नीहार रजन रे जब कहते हैं "जनता का इतिहास लोक विधाओं एव लोक धर्म इत्यादि से ही निर्मित किया जा सकता है।[21] तब इतिहासकारों की सवेदनशीलता स्पष्ट होती है। डी0 डी0 कोशाम्बी ने प्राचीन भारत के सामाजिक और ऐतिहासिक सत्य की खोज के लिए मिथकों का उपयोग कर नया पथ प्रशस्त किया है।[22]

आधुनिक भारत के इतिहास के एक प्रमुख विद्वान लेखक प्रोफेसर सुमित सरकार ने अपने अत्यत नवीन शोध पत्र में भारतीय इतिहास लेखन की इस विडम्बना को स्वीकार करते हुए लोकप्रिय सस्कृति को इतिहास लेखन की परिधि में लाने पर जोर देते हुए कहा है कि "मुझे लगता है कि हमारे 19वी शताब्दी के उल्लेखनीय महानुभावों की विविध सामग्री - धार्मिक पुस्तकें, साहित्यिक कृतियाँ, आत्मकथाएँ, इन्डियन ऑफिस लाइब्रेरी में प्रादेशिक बोली की पुस्तिकाओं के बडे सकलन का यदि गहराई से अध्ययन किया जाय तो अभी ऐसे खजानों का पता चल सकता है। खास तौर से यदि उन्हें पहले की धार्मिक परम्पराओं और समकालीन लोकप्रिय सस्कृति के तथ्यो के मुकाबले में आमने सामने लाया जाए।[23]

नीलाद्री भट्टाचार्य ने अपने नवीन शोधपत्र 'लोक संस्कृति का एजेंडा' में लोक सस्कृति के इतिहास लेखन में उपयोग के बारे में विचार करने का प्रयास किया है।[24]

लाल बहादुर वर्मा ने अपनी पुस्तक "इतिहास के बारे में" में इतिहास लेखन में लोकप्रिय सस्कृति के उपयोग करने की बात उठायी है।[25] किन्तु ये समस्त अध्ययन 'इतिहास लेखन में लोकसस्कृति के उपयोग' के बारे में इशारे भर हैं। लोक सस्कृति को लेकर ऐतिहासिक अवधारणाओं को जॉचने परखने एव निर्मित करने का काम अभी अछूता एवं शेष है। लोक सस्कृति के भीतर से अवधारणाओं के विकास का काम तो अभी बिल्कुल ही हमारी पहुच से बाहर है।

"लोक सस्कृति वादी" एव "इतिहासकारों" के अतिरिक्त भारत मे हिन्दी साहित्य के विद्वानों का भी लोक सस्कृति से सम्पर्क रहा है।[26] किन्तु इन्होंने भी या तो मात्र 'सकलन' का कार्य किया या उसके रूप पक्ष को समझने का कार्य। इतिहास की बात रहने भी दें तो सबसे महत्वपूर्ण कार्य हिन्दी जातीयता का निर्माण, विभिन्न लोक व्यक्तित्वयों की छवियों का अध्ययन या विभिन्न लोक सस्कृतियों ढाँचो की व्याख्या, इन्होंने नही किया। सभवतः उनके ये कार्य इतिहासकारों के लिए उपयोगी होते।

सास्कृतिक नृतत्व शास्त्रियों ने लगातार विकसित एव परिवर्तित होती जा रही लोक सस्कृति को देखने का जो भी थोड़ा बहुत प्रयास किया है वह 'आदिम सस्कृति' की उनकी समझ से आगे नही बढ़ पायी है और नितान्त अनैतिहासिक होकर रह गयी है। इन्होंने लोक सस्कारों से सम्बधित सवर्ग का ढाचा और कार्य प्रणालियों के अध्ययन का निरपेक्ष प्रयास किया जो लोक परम्परा को व्यापकता में समझने में हमारी कोई मदद नहीं करता।[27]

लोक संस्कृति में ऐतिहासिक प्रश्नों के लिए स्थान-

इतिहास में 'समय' और 'दूरी' का, 'काल' और 'घटना' का प्रश्न प्राय. उठाया जाता है। लोक सस्कृति में 'समय' भी है, घटना भी, घटना घटने की प्रक्रिया भी, उसमें शामिल लोगो का उच्छ्वास भी (अर्थात सम्बद्धता का प्रतिशत भी), उस पर प्रतिक्रिया और सुझाव भी। प्रबुद्ध जनों से हमारा आग्रह है कि 'समय'को मात्र तिथि न समझें। हमारे नागर बोध के समय की अवधारणा से ग्रामीण कृषक लोक में समय की अवधारणा भिन्न है। हमारे नागर बोध के पास 'समय की अवधारणा' आग्रेजी महीनों एव तिथियों में विभाजित है तो ग्राम बोध, कृषक चेतना के पास अपनी मौलिक समय सारिणी है जो मौसम, नक्षत्र, रंग इत्यादि से सम्बधित है।[28] लोकप्रिय सस्कृति में समय उनके अपने 'माध्यम' में मिल सकता है न कि हामरे 'माध्यम' में।

लोक सस्कृति के उपागों, लोकगीतों, लोक कहावतों, मुहावरों में घटना, घटित होने के स्थान, उसमें भाग लेने वाले लोगों का उत्साह, उस घटना की तीव्रता एव उसके प्रभाव का स्थायित्व इत्यादि प्रश्नो के उत्तर प्रचुर रुप से विद्यमान है, शर्त यह है कि इन विखरे चित्रों को कोई जोड़ दे। समय की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर परिवर्तनशीलता की गूज लोक सस्कृति में होती है। वर्तमान में इतिहास लेखन के पास घटना विशेष के लिए तो अनेक श्रोत हैं लेकिन निम्न वर्गीय जनता की प्रतिक्रिया 'लोक सस्कृति' को छोड़कर और कहाँ मिल सकती है ?

"इतिहासकार लोकायनों का उपयोग इतिहास के खोये हुए ध्रुवों को जोड़ने के लिए करता है। यह इतिहास के रिक्त स्थानों की पूर्ति भी करता है।"[29]

भारतीय स्वतत्रता सघर्ष जो आधुनिक भारत के इतिहास की एक महत्वपूर्ण सघटना है, उसकी अनेक छविया लोक सस्कृति में विद्यमान है। इनके अध्ययन की दो प्रक्रियाएं हो

सकती हैं- एक तो अपनी पूर्व निर्मित अवधारणा को लेकर लोक सस्कृति के पास जाया जाए तथा उसकी जन प्रामाणिकता ढूढ़ी जाय। द्वितीय, लोक सस्कृति के भीतर से ही अवधारणाए विकसित की जाए तथा उसे पूर्व निर्मित धारणाओं से मिलाया जाये। इस प्रकार एक 'बृहत्त ऐतिहासिक सत्य' को प्राप्त किया जाये। इस उप शीर्षक के अन्तर्गत मैने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की कुछ पूर्व निर्मित अवधारणाओं की लोक व्याप्ति एव लोक के भीतर उन अवधारणाओं की ऐतिहासिक परिणति देखने का प्रयास किया है। 1857 ई0 के स्वतत्रता सग्राम के अध्ययन का प्रयास अनेक शोध पद्धतियों से किया गया है। किन्तु अभी तक हम उसका उद्धर्वाकार रूप ही निर्मित कर पाये हैं। उसका क्षैतिज स्वरूप क्या था ? उसमें जन जुड़ाव की गतिकी का अध्ययन कैसे होगा ? इसके सम्बध में सूक्ष्म से सूक्ष्म एव विशिष्ट जानकारी कहाँ से मिल सकती है ? मुझे लगता है कि 1857 ई0 के स्वतत्रता सग्राम का जन इतिहास रचने के लिए ये बड़े सवाल लोक सस्कृति से पूछने पर इनका उत्तर मिल सकता है।

1857 ई0 के सग्राम की छविया विभिन्न लोक भाषाओं के लोकायनों में मिलते हैं। अवधी, भोजपुरी, मैथिली, के लोकगीतों में इसकी विभिन्न छवियाँ विद्यमान हैं। मुझे तो प्रतीत होता है कि इन श्रोतों से 1857 के स्वतत्रता सग्राम का समानान्तर एव वैकल्पिक इतिहास रचने का प्रयास किया जा सकता है। यह इतिहास कितना नवीन होगा, बिना रचे कहना कठिन है।

भोजपुरी लोक सस्कृति में 1857 के गदर की व्यापक अनुगूँज विद्यमान है। भोजपुरी क्षेत्र में गदर के महान नायक बाबू कुँवर सिंह से सम्बधित अनेक लोकगीत मिलते हैं। अनेक कहावतें प्रचलित हैं जिन्हें क्रमवार विवेचित कर बाबू कुँवर सिंह के लिखित इतिहास के अतिरिक्त 'जन इतिहास' रचा जा सकता है।

इस गदर की अनेक उप जनान्दोलनों, अनेक जन नायकों जिनका गजेटियर एव लिखित रिकॉर्डस में वर्णन नही है, को प्रकाश में लाया जा सकता है। 1857 के गदर में भोजपुर क्षेत्र में विभिन्न गावों की भूमिका का लोकगाथाओं मे वर्णन है-

"जब बढ़ल कुँअर दल लछमनपुर से आगे
पथ गाँव-गाँव तरनाई जागल अनुरागे
जागल बहार बा गाँव बहोरनपुर में
लच्छूटोला, बारसीघा, सारंगपुर में
सग लागल सुरेमनपुर, गउरा अगराईल
धनबाग पहरपुर के उमग में आईल
आते 'करजा' जे दादा के गुरुद्वारा
जहवाँ समाधि कवि देवराम दुलारा।।[30]

(जब अग्रेजों के विरुद्ध सघर्ष का बिगुल फूँकते हुए बाबू कुँवर सिंह लछमनपुर से आगे बढ़े तो गाँव-गाँव की तरुणाई जाग उठी। बहोरनपुर, लच्छूटोला, बरसीघा, सारगपुर, सुरेमनपुर, गउरा, करजा इत्यादि भोजपुर जनपद के गाँव विद्रोह की लहर में बह गए।)

भोजपुर में 'गदर'की चेतना फैलाने वाले 'बँसुरिया बाबा' का वर्णन किसी भी लिखित रिकॉर्ड एव इतिहास पुस्तक में नही है, जबकि भोजपुर की लोक चेतना में यह धारणा बैठी है कि बाबू कुँवर सिह के गुरू एव सलाहकार बसुरिया बाबा ही थे।[31] बँसुरिया बाबा का वर्णन एक भोजपुरी लोकायन में विस्तृत रूप से किया गया है-

बहुत घना दावाँ जगला बा, कई जोजन के ले परमान
सत बँसुरिया बाबा करेले, तपल - तपावल साध महान।[32]

इतिहास लेखन में एक स्थान और है, जहाँ लोक सस्कृति के श्रोत हमारी आवश्यकता

हैं। औपनिवेशिक गजेटियर एव सरकारी श्रोतों में जिन्हे 'डकैत', 'लुटेरे', 'बवाली', कहकर सम्बोधित किया गया है, क्या वे वास्तव में डकैत थे।[33]

पुन. औपनिवेशिक शासन के लिए डकैत कौन हो सकते थे ? इस सन्देहास्पद प्रश्न का उत्तर भी लोक सस्कृति में ढूढा जा सकता है।

मैं यहा बहुत विस्तार में न जाकर बस एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। 26 मार्च 1858 को आजमगढ़ में विद्रोहियों ने कोतवाली पर आक्रमण किया, औपनिवेशिक प्रतीकों को क्षति पहुँचायी। इस घटना में भाग लेने वालों को 'फर्दर पेपर्स रिलेटिव टू म्युटिनी इन द ईस्ट इडीज पृष्ठ 130' (पार्लियामेटरी पेपर्स में सकलित) आजमगढ मे स्थानापन्न सब असिसटेंट का लेफ्टिनेट नाटसन के नाम एक पत्र में 'डकैत' कहा गया है, जबकि एक लोकगीत में इसी घटना की छवि देखिए-

"मत घबरइह SS... कुँअर -अमर भइया
आजमगढ़ में चलत बा लड़इया
किलवा लुटाई, लुटाई कोतवलिया
मत घबरइह.. S.., कुँअर अमर भइया।[34]

इस लोक गीत से स्पष्ट होता है कि भारतीय घटनाओं के लिए औपनिवेशिक सज्ञाओं पर प्रश्न खड़े किए जाने चाहिए। समस्त औपनिवेशिक सज्ञाओं एव निर्णयों को नये सन्दर्भ में समझने में लोक सस्कृति हमारी सहायता कर सकती है।

इसके अतिरिक्त लोक संस्कृति का अध्ययन कर हम इस महान जन सग्राम में 'नेतृत्व' एवं 'जन जुड़ाव' की समस्या को समझने की दिशा में प्रगति कर सकते हैं। विभिन्न लोक भाषाओं में 1857 ई0 के गदर के दिनों के लोकप्रिय आह्वान प्रचलित हैं। इनका अध्ययन

कर हम आन्दोलन में "जन जुड़ाव के ढाचे एव प्रकिया को" समझ सकते हैं। भोजपुरी में प्रचलित ऐसा ही एक 'आह्वान' यहाँ उद्धृत है।

"गाँव - गाँव मे डुग्गी बाजल, बाबू के फिरल दुहाई-
लोहा चबवाई के नेवता बा, सब साज आपन दल बादल।
बा जान गवावई के नेवता, चूड़ी फोरवाई के नेवता
सिन्दुर पोछवावई के नेवता, बा रॉड़ कहवावई के नेवता
जेई हो हमार ते माथ देई, जेई हो हमार ते साथ देई।
बा इहाँ न मौका समझई के, बा इहाँ न मौका बूझइके
कीतो फैरौ नेवता हमार, की तो तइयार हो जूझइके।।

वीर कुँवर सिह, लेखक उदय नारायण सिह, प्रकाशक - शब्द पीठ, के परिशिष्ट पृष्ठ- 335।

'लोक सस्कृति' हमें भारतीय समाज में 'पुनर्जागरण' के प्रश्न को सुलझाने एव समझने में सहायता कर सकती है। औपनिवेशिक काल में लोक सस्कृति में नागर सस्कृति के समानान्तर, पर उससे थोड़ा भिन्न एव सर्वथा मौलिक जागरण की छवि लोक गीतो एव लोक कवियों की रचनाओं में प्राप्त होती है। यदि नागर सस्कृति एव अभिजात्य, शिक्षित, मध्यमवर्गीय सस्कृति में घट रही उस सघटना को पुनर्जागरण कहते हैं तो लोक सस्कृति में जागरण के इन प्रतीकों को क्या कहा जाए? 'पुनर्जागरण' शब्द की अभी तक गढ़ी गई अवधारणा शायद ही अपने में इस अजस्र चेतना को समाहित कर पाये।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्व की कौन सी छवि जन मानस मे बन रही थी? 'जन' से उनका सम्बन्ध किस प्रकार का था और जन का किस तरह का सम्बन्ध उनसे था? इन सारे प्रश्नों का लोक सस्कृति में उत्तर ढूढ़ने का प्रयास किया जा सकता है।

इस प्रकार लोक सस्कृति में ऐसे अनत स्थान हैं जिनसे हम भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास की पुनर्रचना कर सकते हैं।

लोक संस्कृति पर हमारे अध्ययन की प्राविधि एवं सीमाएँ-

'लोक सस्कृति' पर शोध करने के लिए इतिहास के एक शोधक के रूप में हमारे पास कोई बनी- बनाई प्राविधि नही है। इसका मूल कारण है कि भारतीय इतिहास लेखन में इस पर कोई सुसगत कार्य अभी तक नही हुआ है। छिट-पुट कही-कही, इसके सम्बन्ध में मात्र चिन्ताएँ ही प्रकट की गयी हैं। इसके विश्लेषण एव इसमें छुपे इतिहास के सत्यों के लिए प्राविधि के बारे में तो अभी तक न के बराबर चिन्तन हुआ है। 'लोक सस्कृति' और इतिहास को लेकर जो भी कार्य हुए हैं, वे पश्चिमी देशों मे हुए हैं। अतः सज्ञान के क्षेत्र में हमारे समक्ष पश्चिम में विकसित प्राविधि है। यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि पश्चिमी प्राविधि भारतीय लोक समाज के अध्ययन के लिए कितनी प्रासगिक हो सकती है ? भारतीय समाज जो अत्यत जटिल है जिसके स्तरों को खोलना, रहस्यों का भेदन करना भारतीय विद्वानों के लिए कठिन होता जा रहा है, ऐसे मे पश्चिमी प्राविधि कैसे हमारे लिए उपयोगी हो सकती है ? पुन. लोक सस्कृति पर काम करने के लिए उस लोक समाज की आत्मा, उसकी भाषा, उसके बिम्बों एव प्रतीकों की व्याख्या करने की समझ आवश्यक है। अत· इसके लिए एक 'देशज प्राविधि' की आवश्यकता है। जो विभिन्न भारतीय ज्ञानों के अन्तः सवाद से ही सभव है।

हम इस क्षेत्र में अभी प्राविधि के विकास के दौर से गुजर रहे हैं। लोक सस्कृति के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक भौगोलिक (Historical Geographical), ऐतिहासिक पुर्नरचना की प्राविधि, वैचारिक, मनोविश्लेषकीय, सरचनावादी, (Functional Structural) सन्दर्भवादी (Contractual) प्राविधि का उपयोग किया जा सकता है।

हमने इस अध्ययन में आवश्यकतानुसार इन समस्त प्राविधियों में से उपयोगी प्राविधियों का उपयोग किया है। वैसे मूल रूप से मैनें व्याख्यात्मक प्राविधि (Interpretative Method) का प्रयोग किया है। अपना दृष्टिकोण मैने अन्त.नुशासनिक रखा है। आवश्यकतानुसार मुझे समाज विज्ञान, नृतत्व विज्ञान की भी तकनीकों का प्रयोग करना पडा है। इसमें मौखिक तथा लिखित दोनों स्रोतों का मैने उपयोग किया है।

इस प्रकार भारतीय इतिहास लेखन के पास इस सन्दर्भ में एक सुसगत प्राविधि के अभाव में हमारी सीमाएँ स्पष्ट हैं। मौखिक स्रोतों का उपयोग इस अध्ययन में मेरी आवश्यकता भी है, मजबूरी भी। इन स्रोतों की सीमाओ को समझते हुए भी इनका उपयोग मुझे आवश्यक लगा है।

फुट नोटस्

1 पीटर बर्क, पॉपुलर कल्चर इन यरली मेडिवल यूरोप, पृष्ठ- 9

2. वही, पृष्ठ- वही

3. वही, पृष्ठ- 10

4. वही, पृष्ठ- 9

5. श्री जी0 ए0 ग्रियर्सन का इन्डियन ऐंटिक्वेरी, इन्ही प्रवृत्तियों के प्रमाण हैं

6. प0 रामनरेश त्रिपाठी का 'भोजपुरी लोकगीत'तथा ग्राम साहित्य जनपद पत्रिका, अक्टूबर, 1992, इसी प्रवृत्ति की सूचक है

7. कृष्ण देव उपाध्याय का लोक सस्कृति पर किए गए कार्य

    क लोक साहित्य की भूमिका - साहित्य भवन, 1957

    ख. भोजपुरी लोक सस्कृति- हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

ग भोजपुरी लोकगीत - लोक सस्कृति शोध सस्थान वाराणसी

8. पीटर बर्क, पॉपुलर कल्चर इन यरली मेडिवल यूरोप, पृष्ठ- 15

9. वही, पृष्ठ- वही 15

10. वही, पृष्ठ- 22

11 सुमित सरकार, मॉर्डन इन्डिया (1885-1947), मैकमिलन इन्डिया, 1983 पृष्ठ-10

12. ब्लादिमिर प्रोप, 'थ्योरि एण्ड हिस्ट्री ऑफ फॉकलोर' (अरिदुआ वाई0 और रिचर्ड पी0 मार्टिन द्वारा अनूदित और अनातोली लिबरमैन द्वारा सम्पादित) मैनचेस्टर, 1984, मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ- 3

13. ई0 पी0 थॉम्पसन, फॉकलोर, एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड सोशलहिस्ट्री (इन्डियन हिस्टॉरिकल रिव्यू, वाल्यूम II, नम्बर 2, जनवरी 1977)

14. अनील सील, द इमर्जेन्स ऑफ इन्डियन नेशनलिज्म, कम्पटीशन एन्ड कोलावरेशन इन द लैटर नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (कैम्ब्रिज 1968)

15. जे0 एच0 बुमफील्ड, इलिट कॅन्फलीक्ट इन ए प्लुरल सोसाइटी- ट्वेन्टीथ सेन्चुरी बगाल (बर्कले 1968)

16 बिपन चन्द्र का अध्ययन, द राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकॉनामिक नेशनलिज्म इन इन्डिया पी0 पी0 एच0 (1966)

17 रणजीत गुहा द्वारा सम्पादित सर्वाल्टर्न स्टडीज विभिन्न जिल्दो से उभरकर आयी उपाश्रयी अध्ययन की प्रवृत्ति

18. बिपन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी आदि, भारत का स्वतत्रता सघर्ष - भूमिका - पृष्ठ- 16 (हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय,दिल्ली वि0 वि0)। इसका अग्रेजी सस्करण 'पेन्गविन' से प्रकाशित है

19 डेविड हार्डिमैन का शोध पत्र आदिवासी असर्शन इन साउथ गुजरात - देवी मूवमेंन्ट 1922-23, रणजीत गुहा द्वारा सम्पादित सवॉल्र्टन स्टडीज III में सकलित

20. प्रो0 ज्ञान पाण्डेय का शोध कार्य ओ0 यू0 पी0 से प्रकाशित है जिसमें उन्होंने

1926-34 से काग्रेस सगठन के रचनाशास्त्र एव जन सम्बधों का अध्ययन किया है

21 नीहार रजन रे "बगालीर इतिहास (बगला भाषा मे), कलकत्ता 1966, (सस्करण) लेखक समावय समिति, पृष्ठ 3।

22. देखे, डी0 डी0 कोशाम्बी का अध्ययन 'मिथ एण्ड रियलिटी बॉम्बे, 1962, पॉपुलर प्रकाशन'

23. सुमित सरकार, सामाजिक इतिहास, स्थिति और सभावनाए, सॉचा, मई, 1988

24. नीलार्दी भट्टाचार्या 'लोक सस्कृति का एजेंडा' सेन्टर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज, जे0 एन0 यू0 द्वारा आयोजित 'नव इतिहास' पर हुए सेमिनार में प्रस्तुत शोध पत्र

25. लाल बहादुर वर्मा "इतिहास के बारे में" प्रकाशन सस्थान दिल्ली, पृष्ठ- 17

26 इस दिशा में डॉ0 उदयनारायण तिवारी द्वारा भोजपुरी कहावतों का सकलन प्रकाशित हिन्दुस्तानी, अप्रैल 1939, पृष्ठ 259-216, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, का इस दिशा में प्रयास द्रष्टव्य है

27 प्रमुख नतृत्व शास्त्रियों में बी0 एल्विन एण्ड हिवेल, साग्स ऑफ फॉरेस्ट, जार्ज एलेन एण्ड अनवीन, द फॉकटेल्स ऑफ महाकोशल, बॉम्बे, 1944 (ओ0 यू0 पी0) जी0 ए0 गैरिसन, सम भोजपुरी फॉकसॉगस (जे0 आर0 ए0 एस0 जिल्द- xviii (1984), एस0 सी0 दुबे, द कमार्स (लखनऊ)

28. ग्रामीण लोक में क्लासिकी समय की अवधारणा पौराणिक है। जिसके अनुसार-

भगवान विष्णु को काल स्वरुप माना गया है। 15 निमेष = 1 काष्ठा, 30 कास्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुर्हूत, तीस मुर्हूत का एक दिन रात ! उतने ही दिन-रात का दो पक्ष युक्त एक मास होता है। 6 महीने का एक अयन। दक्षिणायन् और उत्तरायन दो अयन मिलकर एक वर्ष होता है

देवताओं का 12 हजार वर्षों का सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युग होता है।

लोक में इस पौराणिक समय की अवधारणा की आवश्यकतानुसार उपयोग करते हुए, सामान्य लोगों ने चैत, माघ, फाल्गुन जैसे मास। हथिया, भद्रा, स्वाति नक्षत्र निर्मित कर

लिये हैं। मौखिक साक्षात्कारों से यह भी स्थापित होता है कि निरक्षर कृषक जनता घटनाओं से अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष तक पहुँचने के क्रम में समय को पकड़ती हैं। यहाँ समय की सीधी अवधारणा प्राप्त हो जाने की सुविधा नही है

29. डॉ0 सौमेन सेन, इन्टर डिस्पलिनरी स्प्रोच टू फॉकलोर स्टडीज नॉर्थ - ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटीज, जॉर्नल ऑफ सोशल साइन्सेज एण्ड हुमानिटीज (जनवरी- मार्च 1993)

30. सर्वदेव तिवारी 'राकेश' 'कालजयी कुँवर सिंह' पनरहवाँ सर्ग पृष्ठ -315, भोजपुरी अकादमी, पटना का प्रकाशन

31 ओरल हिस्ट्री कैसेटन न0 (1) में जगदीशपुर निवासी बाबू रामशरन सिंह के साक्षात्कार पर आधारित

32 उसी मे जगदीशपुर निवासी राम उदय मिश्र के स्वर में ध्वन्याकित। सकलन- व्यकतिगत

33. अग्रेजों द्वारा 1871 ई0 में लागू किए गए अपराधी, जनजाति अधिनियम की परिधि में बीसवी सदी के मध्य तक अनेक जातियों तथा जनजातियों के करीब एक करोड़ तीस लाख लोगों को समेट लिया गया और उन सबके विरुद्ध विशेष दडादि का विधान कर दिया गया। इसका आधार यह धारणा थी कि कुछ वर्गों के लोग जन्मतः या आदतन अपराधी होते है और उनकी प्रवृत्ति पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रही है। प्राय इसमें गरीब और निम्न कोटि के धधे करने वाले लोग थे। उदाहरणार्थ- मगहिया डोम। इस अधिनियम की धाराए 1897, 1911, 1924, तथा 1947 में सशोधित की गयी और अत में 1952 में इसे रद्द कर दिया गया। (डेंजरस कास्टस एन्ड ट्राइब्स , द क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट एन्ड द मगहिया डोम्स ऑफ नार्थ ईस्ट इन्डिया, याग द्वारा सम्पादित क्राइम एन्ड, क्रिमिलिटी इन ब्रिटिश इन्डिया (यूनि0 आफ ऑरिजोना प्रेस, 1945) पृष्ठ 108-27

34. ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 1 में सकलित, सकलन व्यक्तिगत

चतुर्थ अध्याय

रचना का काल (1857-1900 ई0)

लोक सजगता एवं सुखदेव भगत की संघटना का वृतान्त

सुखदेव भगत का जन्म माघ मास, 1840 ई0 में हुआ था।[1] उनके पिता का नाम रामचन्द्र भगत था, किन्तु उन्हें लोग पुकार के नाम 'बगुला भगत' कहकर पुकारते थे।[2] वे उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक छोटे से ग्राम 'घथुरी टोला'[3] के निवासी थे।[4] वे न काशी गए और न कलकत्ता, पर 11 वर्ष की उम्र से ही कवित्त कहने लगे।[5] उनके पिता शिव नारायणी पन्थ[6] को मानने वाले थे। फलत उन्होंने भी इस लोकप्रिय पन्थ का ही पालन किया।[7] 17 वर्ष की उम्र से ही वे चेला मूँड़ते लगे।[8] अर्थात बलिया, गाजीपुर, बिहार के - शाहाबाद, छपरा, इत्यादि स्थानों में भ्रमण कर गरीब एव पिछड़ी जाति के लोगों को उपदेश देने लगे।[8] उनके उपदेश सरल, सुबोध, चेतन एव आलोचनात्मक होते थे।[10] वे जिन विधाओ में अपने कथ्य अभिव्यक्त करते थे, उनमें लोकोक्तिया, उपदेशगीत, लोक कथाए एव सम्भाषण होते थे।[11] उनकी भाषा भोजपुरी थी। उनके शिष्यों की समाप्त हो रही परम्परा में से कुछ अब भी जीवित हैं। उनके अधिकाशत. शिष्य काल-कवलित हो गए। सुखदेव भगत जाति के दुसाध थे।[12] उनकी मृत्यु 1899 ई0 में गंगा के तट पर अवस्थित बक्सर के पास एक गाव ईटाढ़ी में हुई।[13]

उनका काल

काल से हमारा तात्पर्य उस सामाजिक, आर्थिक और निरन्तर परिवर्तनशील घटनाओं से है, जो सुखदेव भगत के समय में निरन्तर घटित हो रही थी। वस्तुत. 1800 ई0 से 1899 ई0 तक का उनका 59 वर्ष का यह काल खण्ड भारत के तीव्रतर औपनिवेशिककरण

एव उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया का काल है।[14] इसी कालखण्ड में औपनिवेशिक नीति-निर्माताओं ने अत्यत सुनियोजित एव आधुनिक ढग से भारत के शोषण के कार्य को सम्पन्न किया। विकास- "शोषण के लिए" की नीति पर चलते हुए उन्होने भारत में सचार के आधुनिक ससाधन रेलवे (1853), टेलिग्राफ, इत्यादि का विकास किया। इससे सम्पूर्ण भारत एक ईकाई के रूप में शनै शनै परिवर्तित होने लगा था।[15] किन्तु पूर्वी प्रदेशों में बलिया, गाजीपुर, शाहाबाद के दूरस्थ ग्रामों में इन सचार साधनों का इस काल खण्ड में तनिक भी विकास न हुआ। अतः इस क्षेत्र की जनता का इन सचार साधनों से सीधा सम्बन्ध नही बना, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से लोगों की चेतना में इन औपनिवेशिक प्रयासों के प्रति भय, आकर्षण एव लोक आलोचना की सम्मिश्रित प्रतिक्रिया प्रस्फुटित हुई।[16] इन क्षेत्रों के अधिकाश लोगों ने बहुत दिनों बाद रेल देखा। रेल देखकर उनके मन में प्रथम प्रतिबिम्ब 'राक्षस' का बना।[17]

इस समय बनारस सम्पूर्ण पूर्वी उत्तर प्रदेश एव बिहार के कुछ भाग की सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक राजधानी के रूप में अवस्थित था।[18] इसकी सास्कृतिक हलचलें आस-पास को अवश्य ही प्रभावित करती होंगी। किन्तु इसी के साथ दूरस्थ लोक जगत का "प्रभाव के इन तन्त्रों" से कटाव एक सत्य के रूप में परिलक्षित होता है। 1857 ई0 के विद्रोह ने व्यापक रूप से इस क्षेत्र को प्रभावित किया। लोकचेतना में अवस्थित औपनिवेशिक प्रयासों के प्रति आलोचना एव भय ने इस आन्दोलन में अपने को क्रियाशील किया। इसलिए डॉ0 राम विलास शर्मा 1857 ई0 के आन्दोलन को 'हिन्दी क्षेत्र के पुनर्जागरण का गोमुख' मानते हैं।[19] इस महान घटना के समय सुखदेव भगत की आयु केवल 17 वर्ष की थी, फिर भी वे घूम-घूमकर अपने शिष्यों को इस आन्दोलन में भाग लेने को उत्साहित व प्रेरित करते थे।[20]

इस क्षेत्र में उत्तर मध्यकाल में कस्बों और बाजारों का विकास तेजी से हुआ था।

फलतः लोकचेतना का कस्बों की चेतना के साथ सम्बन्ध पूर्व औपनिवेशिक काल में ही हो चुका था। समाज वैज्ञानिक ढग से देखने पर इस काल खण्ड की एक विशेषता यह स्पष्ट होती है कि नागर चेतना के साथ लोक चेतना का एक सहभागी किन्तु 'आत्मनिर्भर' सम्बन्ध विकसित हुआ।

लोक बौद्धिकता की रचना प्रक्रिया

लोक बौद्धिकता की रचना प्रक्रिया नागर बौद्धिकता की रचना प्रक्रिया से भिन्न होती है। इस सम्बन्ध में अन्तोनियों ग्राम्शी की अवधारणा है कि नागर बौद्धिकता औद्योगिक विकास के समय विकसित होती है एव इसी के साथ इसका भाग्य जुड़ा होता है। उनमें निर्माण की योजना बनाने की स्वतः स्फूर्त पहल नही होती। उनकी सम्पूर्ण चेतना में जोखिम उठाने वाला (Interprenure) और उससे सम्बधित जनता के बारे में विचार का हिस्सा ज्यादा होता है। इनमें सामान्य नागर बौद्धिक अधिक मानकीकृत होता है किन्तु सर्वोच्च नागर बौद्धिक अपने को औद्योगिक बौद्धिक के रूप में स्थापित करता है।[21]

'ग्रामीण बौद्धिक का अधिकाश भाग पारपरिक होता है। वे देहात की जनता के ग्रामीण आधार से जुड़े होते हैं। उनका सम्बन्ध कस्बों, छोटे शहरों, पेटी बुर्जुआवर्ग से होता है। इस प्रकार का बुद्धिजीवी वर्ग ग्रामीण जनता को स्थानीय एव राज्य प्रशासन के विभिन्न वर्गों के समीप लाता है। इस प्रकार के कार्यों के कारण उसके प्रयास जाने-अनजाने में राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधि हो जाते हैं। ग्रामीण बौद्धिकों (पुजारी, कानूनविद, लेखक, शिक्षक) का जीवन स्तर सामान्य कृषकों के जीवन स्तर से ऊचा होता है।[22]

ग्राम्शी के प्रति सम्पूर्ण आदर प्रकट करते हुए भी मैं यह प्रस्तावित करना चाहूंगा कि ग्राम्शी की इस अवधारणा का भारत में लोक बौद्धिकता के निर्माण की प्रक्रिया के अध्ययन

के लिए कुछ मात्रा में ही उपयोग किया जा सकता है। सुखदेव भगत के स्वरुप एव ग्राम्शी की अवधारणा में कुछ तो सामान्यताए हैं यथा- उनका पारपरिक होना, किसान जनता से सम्बंध, छोटे शहरी एव पेटिबुर्जुआ वर्ग से सम्बध, उनके कार्यों का जाने-अनजाने राजनीतिक हो जाना, इत्यादि। किन्तु उनमें मूल भिन्नता है कि सुखदेव भगत एक उदूत एव अत्यन्त पिछडी जाति से जुड़े हुए थे। अतः उनका जीवनस्तर सामान्य किसान से भी निम्न था। दुसाध जाति के इस बौद्धिक की बौद्धिकता की निर्माण की प्रक्रिया लोक ससार में सम्मिलित उच्च वर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग के निर्माण कि प्रक्रिया से भिन्न है। उनकी चेतना के निर्माण में तत्कालीन प्रभावी परम्परा द्वारा उनका सदियों से तिरस्कार किये जाने के कारण उसके प्रति कुण्ठा एव कुण्ठाजनित आकर्षण एव विरोध का स्वर सुनाई पड़ता है। जिस परम्परा के प्रति उनके मन में विरोध है, उसी के प्रति आकर्षण भी है। यह भारतीय लोक में अछूत बौद्धिकों का द्वैध है। पेटि बुर्जुआ वर्ग एवं सम्भ्रान्त वर्ग सुखदेव भगत को निम्न जाति का समझकर हेय दृष्टि से देखता था, अतः उनका सामाजिक आधार लोक में भी विशेषकर निम्न वर्ग के लोक में था। लोक बौद्धिकता एवं नागर बौद्धिकिता दोनों के निर्माण के लिए सामाजिक - राजनीतिक परिवेश ब्रितानी उपनिवेशवाद ने ही उपस्थित किए। उस काल में विकासमान राष्ट्रीय आन्दोलन ने इसके निर्माण की प्रकिया को तीव्र किया। किन्तु दोनो में अन्तर यह है कि लोक बौद्धिकता में 'स्वत. स्फूर्तता' के तत्व ज्यादा हैं। 'स्वत· स्फूर्तता' निम्न वर्गों के इतिहास का प्रमुख चरित्र है। इस 'स्वतः स्फूर्तता' में जागरूक नेतृत्व के अनेक तत्व निहित होते हैं किन्तु उनमें कोई एक तत्व प्रभावी नही होता है। वस्तुतः प्रत्येक स्वतः स्फूर्त चेतना जो आन्दोलन में रुपान्तरित होती है अपने में जागरुक नेतृत्व को गुप्त ताप के रूप में छुपाये रहती है।[23] कुछ वर्ग इसे वस्तुनिष्ठ तकनीक के रूप में प्रयोग करते हैं। लोक चेतना में स्वतः स्फूर्तता को उनकी सहज स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं के रूप में प्रचलित लोक मुहावरों से समझा जा सकता है।

यहा पर स्वतः स्फूर्तता का तात्पर्य 'निरपेक्ष स्वतः स्फूर्तता' से नही है। यूँ भी

व्यावहारिक रुप से निरपेक्ष स्वत: स्फूर्तता असभव है। नागर बौद्धिक का सम्बन्ध बडे नगरों में होने एव सूचना एव सचार साधनों से जुडे होने के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों से सीधा किन्तु स्टीरियोटाइप था। लोक बौद्धिकता अत्यत पिछडे गावों में विकसित हो रही थी। अत. मुह से मुह, कान से कान होती हुई खबरें उन तक पहुचती थी। परन्तु अपनी अत्यन्त सवेदन- शीलता एव स्वत स्फूर्तता के कारण औपनिवेशिक अनुभवों के प्रति यह वर्ग नगरीय बौद्धिकों से अत्यधिक तीव्र प्रतिक्रिया करता प्रतीत होता है। अपने सामाजिक एव सास्कृतिक वातावरण जनित कुछ विशिष्ट तत्वों के कारण उनका राष्ट्रीय चेतना से अधिक रचनात्मक एव चेतना के स्तर पर अधिक सघन सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है।

नागर बुद्धिजीवी वर्ग में जो उपनिवेशवाद के प्रति द्वैध की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है।[24] वही लोक बौद्धिकता ब्रितानी उपनिवेशवाद के प्रति विरोध की स्पष्ट दृष्टि रखती है। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि ब्रितानी उपनिवेशवाद ने प्रारम्भ से अन्त तक सर्वाधिक गावों को ही लूटा। किन्तु इस स्पष्टता की सरचना सरल न होकर अत्यत जटिल होती है। लोक बौद्धिकता में भी द्वैध है किन्तु यह द्वैध अपनी परम्परा के प्रति लगाव एव उसकी रुढ़ियों के विरोध का है।

किन्तु एक सामान्य लोक बुद्धिजीवि एव एक अछूत लोक बौद्धिक में यह द्वैध थोड़ी भिन्नता के साथ विद्यमान रहती है। 'प्रभावी परम्परा' जब अछूत लोक बौद्धिक को स्वीकार ही नही करती तो उससे लगाव क्या होगा ? यहाँ पर लगाव के स्थान पर 'आकर्षण' दिखायी पड़ता है। एक दमित चेतना स्वप्न लोक में इस आकर्षण की रचना करती है। अछूत लोक बौद्धिक इसी के साथ पहली धारा के समानान्तर- "परम्परा की

दूसरी धारा" की रचना करता है। यहाँ दूसरी धारा प्रभावी धारा से अधिक तार्किक एव गतिशील भावों से ओत-प्रोत है। इसकी अभिव्यक्ति का माध्यम इसके प्रतीक, बिम्ब एव कथनोपकथन अत्यधिक लोक अर्थों से पूर्ण एव करुणा के निकट होते हैं। यह करुणा आत्मरुदन न होकर आलोचना के तत्वों से भरपूर एव लोकशक्ति के निकट होती है।

सुखदेव भगत का सांस्कृतिक एवं बौद्धिक रुपान्तरण

सुखदेव भगत के सास्कृतिक एव बौद्धिक रुपान्तरण की प्रक्रिया एव उसके रुपान्तरण के लिए प्रभावी तत्व अब तक अध्ययन की परिधि से बाहर रहे हैं। यह रुपान्तरण की प्रक्रिया अब तक अध्ययन के परिक्षेत्र में आये पुनर्जागरण कालीन सामाजिक कार्यकर्ताओं से थोड़ा भिन्न रहा है।[25] क्योंकि जहाँ उनके अन्य समकालीन सामाजिक कार्यकर्ताओं एव बुद्धिजीवियों का सम्बन्ध हिन्दू धर्म की पहली परम्परा से था, वही सुखदेव भगत का सम्बन्ध हिन्दू धर्म की लघु परम्परा (Little Tradition) से था। अब तक इतिहासकारों ने अपने अध्ययन का अधिकांश भाग जिन औपनिवेशिक बुद्धिजीवियों के अध्ययन में खर्च किया है, वे नागर चेतना से युक्त थे। वही सुखदेव भगत लोक चेतना से सम्बद्ध थे। लोक में भी सर्बण और स्वीकृत चेतना से भिन्न सुखदेव भगत निम्नवर्णीय एव तिरस्कृत चेतना के प्रतीक थे। इसके कारण उनके सन्दर्भ में तत्कालीन औपनिवेशिक समाज में 'सघर्ष एव सहयोग' के समीकरण भिन्न थे। उनके लिए तत्कालीन राज्य एव समाज में अन्तर्विरोधों का ढांचा वैसा ही नही था, जैसा राममोहन राय एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए था। वैसा भी नही, जैसा निम्नवर्णीय किन्तु शिक्षित एव नागर ज्योति बा फुले के लिए था। ज्ञातव्य है कि सुखदेव भगत का जन्म एक दुसाध परिवार में हुआ था, जो शिवनारायणी सम्प्रदाय को मानता था। अतः जन्म से ही उन्हें दुखों के रागों से पूरित भजन सुनने को मिले थे।[26] शिवनारायणी भजनों की रहस्यात्मकता ने उनकी अभिव्यक्ति की भाषा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[27] अतः उनकी सामाजिक प्रतिक्रिया की भाषा 'लोक की लघु

परम्परा की भाषा' के ज्यादा निकट थी। उनकी वाक्य रचनाओं में रैदास, शिवनारायण जैसे भक्त सन्तों के बिम्ब निहित थे। ये बिम्ब अपनी प्रवृत्ति एव प्रकृति में हिन्दू धर्म की लघु परम्परा की भाँति धार्मिक कम, धर्म निरपेक्ष ज्यादा थे।

तत्कालीन औपनिवेशिक समाज में सुखदेव भगत की चिन्तायें वैसी ही नही थी जैसी राजाराम मोहन राय या भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की थी। चूँकि सुखदेव भगत का सामाजिक लगाव एक अछूत, निरक्षर, लोक बौद्धिक का लगाव था। अतः शिक्षित, नागर, सवर्ण चेतना के दृष्टिकोण से उसकी भिन्नता स्वाभाविक ही है। यथा-सुखदेव भगत की चिन्ता विधवा विवाह से अधिक अशिक्षित गँवई लोगों द्वारा घर मे अपनी पत्नी को लाठी से पीटने से मुक्ति की ज्यादा थी। 'दहेज विरोध' उनकी सामाजिक गतिविधि का मुख्य अग था।[29] औपनिवेशिक राज के स्थानीय प्रशासन के भ्रष्टाचार एव दमन के प्रति उन्होने अनत प्रतिक्रियाए व्यक्त की हैं, क्योकि औपनिवेशिक राज के स्थानीय प्रशासन का सम्बध ग्रामीण समुदाय के दैनिक जीवन से था।

इस प्रकार सुखदेव भगत की चिन्ताओं एव कार्यों का तत्कालीन स्थापित पुनर्जागरण कालीन व्यक्तित्वों एवं कृतित्वों के अन्तर को समझने के लिए सुखदेव भगत के कार्यों का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

नदी पार करने का अभियान-

सुखदेव भगत पूरबी क्षेत्र में नदी पार करने के प्रबल प्रवक्ता बनकर उभरे। भारत की रुढिगत लोक परम्परा जो हिन्दू धर्म के बौद्धिक रुढ़ियों के प्रभाव में थी, नदी पार करने को धर्म विरुद्ध मानती थी। हलाँकि प्राचीन काल में भारतीय नदी एव समुद्र पार जाते थे और वहाँ व्यापार भी करते थे। किन्तु मानव का अपनी शक्ति पर भरोसा जैसे-जैसे कम

हुआ और नदियों की भयावहता बढी, नदी पार जाना लोक तर्कों के आधार पर निषिद्ध माना जाने लगा।[30] यह निषिद्धि धीरे-धीरे रुढ़ियों में परिवर्तित होने लगी और इससे ग्रामीण समुदाय शनै शनै व्यापार, सचार एव आधुनिक सूचनाओं से पृथक होता गया। सुखदेव भगत ने जब शिष्य परम्परा प्रारम्भ की तो उन्होंने मल्लाहों को ज्यादा शिष्यत्व प्रदान किया। इसके पीछे उनका तर्क था कि " मल्लाहे भवसागर पार कराई, मल्लाहे नदी पार कराई, मल्लाहे बक्सर पहुँचाई।[31] अर्थात मल्लाह ही भवसागर पार करायेगा। मल्लाह ही नदी पार कराएगा और वही बक्सर पहुचाएगा। इस वाग्मिता में नदी पार करने को भवसागर पार करने से जोड़कर इसके प्रति मानव लालसा को तीव्र किया गया है। इन पक्तियों में बक्सर पहुचाने के सन्दर्भ का मैं यह अर्थ प्रस्तावित करता हू - चूकि बक्सर बलिया के बाद गगा नदी के पार है,जो उत्तर मध्य काल से ही व्यापार का विकसित केन्द्र बन गया था अत नदी पार कराने का अभियान चलाकर विकास एवं सूचनाओं से कटे ग्रामीण समुदाय को व्यापारिक केन्द्रों से जोडने की अवधारणा उनके मन में रही होगी। इस अभियान में वे प्राय: एक पारम्परिक लोकगीत का प्रयोग करते थे- जिसमें एक माँ नदी से विनती करती है कि " हे नदी, मेरे बेटे को नदी पार जाने दे, नदी पार जायेगा तो नमक तेल लाएगा, यहाँ घर में मेहमान आकर बैठा है।

सुखदेव भगत अपने प्रत्येक मल्लाह शिष्य को उपदेश देते थे कि कम से कम दो लोगों को आप नदी पार करायें, इससे आप स्वय भी भवसागर पार कर जायेंगे।"[33] इस प्रकार सुखदेव भगत भवसागर के प्रतीक का उपयोग कर, उसे नदी पार करने से जोड़कर, तत्कालीन औपनिवेशिक एव रुढ़िग्रस्त ग्रामीण अचलों को व्यापारिक केन्द्रों, शहरों एव तत्कालीन आधुनिक सूचना केन्द्रों से जोड़ना चाहते थे। साथ ही सामन्ती रुढ़ियों में बधे निम्नवर्गीय लोगों को व्यापारोन्मुख भी करना चाहते थे। उनकी सोच एव दृष्टिकोण का यह भाग उस समय के ग्रामीण भारत में एक प्रगतिशील एव विकसित पग था।

रेल पर चढ़ने का समर्थन-

1853 ई0 में जब भारत में रेल्वे का विकास हुआ तो धीरे- धीरे उसकी खबर गावों तक पहुची। भोजपुरी लोक में बहुत दिनों बाद कुछ लोगों ने रेल देखा।"[34] उन लोगों ने आकर जब रेल का चित्र खीचा तो निरक्षर लोगो के मन में एक क्षण मे रेल की छवि 'राक्षस' के रुप में बनी।[35] यहा 'राक्षस' का बिम्ब दो अर्थों को अभिव्यजित करता है। एक अर्थ में, रेल अपने शारीरिक रुप में राक्षस लगती है दूसरे अर्थ में, वह औपनिवेशिक सत्ता के राक्षसी चरित्र का चित्र भी खीचती है। प्रारम्भ में रेल से निरक्षर ग्रामीण डरते थे।[36] सुखदेव भगत ने रेल पर चढ़ने का, रेल को स्वीकार करने का समर्थन किया। वे प्रायः अपने भाषणों में एक कवित्त का उपयोग करते थे-

डर SS मत, रेल पर चढ़ SS।[37]

वे सम्भवत रेल की महत्ता को समझते थे- जो भारतीय लोक की जड़ता को तोड़ेगी, लोगों के व्यापार का विकास होगा, आधुनिक दुनिया से उनका सवाद भी होगा। लोक में रेल का यह समर्थन 'भारतेन्दु की राज्य भक्ति' की तरह का नही था। सुखदेव भगत की इसी समय की विकसित तार्किक अभिव्यक्ति एक पारम्परिक भोजपुरी लोकगीत में दिखाई पड़ता है-

'रेलवा न बैरि, जहजवा ना बैरि'
से पइसवा बैरि ना SS...,
मोर सइयाँ के बिलमावे से
पइसवा बैरि ना ..SS.."[38]

अर्थात रेल हमारा विरोधी नही है, जहाज भी हमारा विरोधी नही है हमारा विरोधी तो वह पैसा है, जो हमारे पति को खीचकर बाहर ले जा रहा है।

नारी समस्या के प्रति सुखदेव भगत का दृष्टिकोण

नारी समस्या के प्रति सुखदेव भगत के दृष्टिकोण के प्रति एक बेहतर समझ विकसित करने के लिए मुझे यह जरूरी लग रहा है कि औपनिवेशिक समाज में नारी की स्थिति और औपनिवेशिकता का नारी के प्रति दृष्टिकोण को समझा जाये।

ब्रितानी उपनिवेशवाद के आने पर भारत में आर्थिक गतिशीलता तो बढी किन्तु आर्थिक विकास के क्षेत्र में कई दुर्घटनाए भी हुई यथा-

वीऔद्योगीकरण, हस्तशिल्प एव ग्रामीण उद्योगों का पतन। अपने नवीन शोध अध्ययन में सूजी थारु का मानना है कि इन आर्थिक दुर्घटनाओं के कारण नारियों का व्यापाक जगत जो हस्तशिल्प, ग्रामीण उद्योग इत्यादि से जुड़ा हुआ था, हाशिए पर आ गया और 'मध्य वर्गीय नारियों का एक आदरणीय वर्ग' सामने आया। समाज का काफी कुछ वहिष्कृत हुआ।[39] सुमन्त बनर्जी ने अपने उत्तेजक शोध में यह स्थापित किया है कि वैष्णव मार्ग जिससे भक्ति आन्दोलन जुड़ा हुआ था, ने उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में समाज के बहिष्कृतों को सम्मान दिया।[40] भारत की जनगणना, बगाल 1872 से सूचना मिलती है कि वैष्णवों ने उन सभी को गले से लगाया, जिन्हें सभी ने तिरस्कृत कर दिया था। अछूत, असहाय, रोगी, दुर्भाग्य शाली सभी। विधवा तथा परिवार से निष्कासित महिलाए, सभी को उन्होंने आश्रय दिया।[41] सुमन्त बनर्जी समकालीन दस्तावेजों से स्थापित करते हैं कि गांवों से महिलाए, विधवा, व्याही या अनव्याही अपने घरों को छोड़कर वैष्णव मठों में रहने जाने लगी। यहा की धार्मिक व्यवस्था ने उन्हें गतिविधि की स्वतत्रता दी तथा पुरुष सम्बधों में भी उन्हें सीमित मात्रा में स्वतत्रता प्रदान की। वैष्णव नारियाँ द्वार-द्वार भिक्षा मागने के लिये घूमने लगीं।[42] किन्तु 'आदरणीय मध्य वर्गीय महिलाओं का वर्ग जिसे 'भद्रलोक महिलाएं'[43] कहा गया है, की अवधारणा, मान्यताए जब स्थापित हो गयी तो पुनः सामाजिक दबाव से नारी मुक्ति का यह वैष्णव अभियान दब सा गया। नयी विकसित

आदरणीय मध्य वर्गीय नारी सामाजिक परिदृश्य पर आयी। अत· समाज सुधार आन्दोलनों का अन्तः स्वर भी बहुत कुछ गृहणी, भद्रलोक, धनी परिवारों की महिलाओं से जुड़ गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में चूकि पुनर्जागरण का आन्दोलन देर से पहुचा और उसकी पहुच भी दूरस्थ ग्रामीण महिलाओं तक न हो पायी। अत इन क्षेत्रों में महिलाओं पर सामन्ती दबाव गतिशील रहा।

नारी समस्या के प्रति सुखदेव भगत के दृष्टिकोण में हम अन्य पुर्नजागरण कालीन सामाजिक कार्यकर्ताओं से विभेद पाते हैं। नारियों के सम्बध में वे मूल और प्राथमिक समस्या दहेज को मानते थे। विधवा विवाह का प्रश्न उनके लिए महत्व की सूची मे दूसरे नम्बर पर था[44] हालाकि बगाल के पुनर्जागरण कालीन नेताओं के लिए विधवा विवाह महत्वपूर्ण था। जिस समाज में सुखदेव भगत कार्यरत थे दहेज उसकी प्रथम मजबूरी थी। दहेज की कुप्रथा की एक अत्यत विकृत परिणति थी- 'बेटी बेचना'। इसमे दहेज दे मनोनुकूल वर तलाश न कर पाने की मजबूरी में पिता बूढ़े किन्तु धनी वर को अपनी बेटियाँ बेंच दिया करते थे। उनकी दृष्टि में दहेज नारी को पुरुष से हीन बताने का प्रथम प्रतीक था। उनका कहना था, 'लइका लइकी, ई दूनों' परमात्मा के अश हवन स SS, नादहेजल S, नादहेजद S।[45] सुखदेव भगत अपने शिष्यों को घरों में अपनी पत्नियों को न पीटने का उपदेश दिया करते थे। इस सम्बध में उनका कहना था कि जैसे कुम्हइन (एक प्रकार की जंतु जो मिट्टी का अत्यंत कलात्मक घर बना लेती है) माटी में सुन्दर घर बना ले ली, ओइसही मेहरारू भी आपन घर रच-रच के बनावली, आतु पुरुखा ओकरे घर में जाके, ओकरे के मारल S..। इ महापाप ह।[46] अर्थात जिस प्रकार कुम्हइन मिट्टी से अपना घर बना लेती है, वैसे ही नारी भी रच-रचकर अपना घर बनाती है, और तुम पुरुष उसी के घर में जाकर उसी को मारते हो, यह महापाप है।

इस प्रकार नारी समस्या के प्रति उनका दृष्टिकोण ज्यादा यर्थाथवादी एव भोगे हुए

सच्चाई से सम्बधित था। पूरब के क्षेत्र में यों भी दहेज की समस्या विधवा विवाह से ज्यादा महत्वपूर्ण थी। हलाकि दहेज मूल्य के रूप में कम, वस्तु के रूप में ज्यादा थी।

अनमेल विवाह - इस क्षेत्र के गावों की एक भीषण नारी समस्या के रूप में औपनिवेशिक काल में विद्यमान थी। उसे भारतीय लोक में 'शिव और गउरा' (पार्वती) के मध्य अनमेल विवाह की प्रासगिकता का मिथक रचकर स्थापित किया गया था। यों इस मिथक का विखण्डन लोक चेतना ने स्वमेव ही करना शुरू कर दिया था। भोजपुरी क्षेत्र में गाये जाने वाले एक लोकगीत में पार्वती की मा मन्दाकिनी अपना दुख इस प्रकार कहती हैं- नारद बाम्हन ने हमारी बेटी का विवाह शकर नामक बूढ़े वर से करा दिया है। यदि नारद बाम्हन मुझे मिल जाता तो मैं उसकी दाढ़ी पकड़ कर खीच लेती।[47] इसी प्रकार की लोकचेतना की आलोचनात्मकता को सुसगत ढग से विकसित करते हुए सुखदेव भगत ने अनमेल विवाह के विरोध में अनेक कवित्त की रचना की.-

1. अनमेल विआह करे मोहन सेठ आज
   हे दुनिया तोहें लागे ना लाज।"[48]

औपनिवेशिक स्थानीय प्रशासन के भ्रष्ट आचरण के विरुद्ध सुखदेव भगत की प्रतिक्रिया-

सुखदेव भगत में सम्पूर्ण ब्रितानी उपनिवेशवाद के निर्माण के ढाचे एव ततुओं के प्रति कोई सुसगत दृष्टिकोण भले ही विकसित न हुआ हो, किन्तु औपनिवेशिक स्थानीय प्रशासन जिसका ग्रामीण जीवन से सीधा सम्बन्ध था, के प्रति उनका दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था। वे सरकार के कर्मचारियों पर सदैव व्यग किया करते थे।[49] इस सम्बध में मैंने लोक में प्रचलित उनकी सात लोक कहावतों का सकलन किया है।[50] वे प्राय: कहा करते थे 'उजर सांढ़ आईल, आ सौसे बलिया चरि गईल'[51] यहां 'उजर साढ़' के बिम्ब की व्याख्या आवश्यक है। साढ़ लोक मानसिकता का अत्यत भयावह बिम्ब है। लोक व्याख्याकारों ने इसकी व्याख्या 'सर्वाधिक शोषक' के रूप को रुपायित करने वाले प्रतीक के रूप में किया

है।[52] यहाँ पर साढ ब्रितानी उपनिवेशवाद का ही प्रतीक है, क्योकि उपरोक्त कहावत में इसे 'उजर' अर्थात उजला 'गोरा' बताया गया है। एक अन्य कहावत में इस साढ को 'भुअर' बताया गया है। इस बिम्ब की व्याख्या सामन्तों के अर्थ में इसलिए नही किया जा सकता है क्योकि इसके लिए 'आइल' क्रियापद का प्रयोग किया गया है। 'आइल' से यहा पर कही बाहर से आने वाली शक्ति की अर्थ सूचना मिलती है। उनकी एक अन्य कहावत द्रष्टव्य है-

"बटोर के ले जाई सोना-चादी
हमनी इहाँ आइल बा अग्रेजवन के आँधी।[53]

अर्थ:- हमारे यहाँ अग्रेजों की आधी आइ है, जो हमारे यहा से सोना चादी बटोर कर ले जायेगी।

ग्रामीण भारत की तत्कालीन अवस्था को समझने के लिए उनकी एक अन्य कहावत द्रष्टव्य है-

हमनी गरीबवन के चूस के
बाप बनल..S. मूस के।[54]

अर्थात् हम गरीबों को चूसकर इतने मोटे हुए हैं कि मूस के पिता के सदृश दिख रहे हैं।

इस प्रकार सुखदेव भगत स्थानीय शक्ति के ढाचे के प्रति अत्यत खीझ एव प्रतिरोध की भावना रखते थे। जिसकी अभिव्यक्ति उनके व्यग वाणों में होती थी। यह एक महत्वपूर्ण अवस्थिति है कि जब कोई चेतना सगठित प्रतिरोध की तैयारी कर रही हो तो उसकी प्रारम्भिक अवस्था में व्यग एक स्वाभाविक एव आवश्यक अस्त्र है। सुखदेव भगत जिस पूरबी लोकचेतना के प्रतीक थे वह भी इस दौर में प्रतिरोध के नये अस्त्रो का निर्माण कर रही थी, क्योकि उसका एक महत्वपूर्ण अस्त्र 1857 के आन्दोलन के रूप में उपयोग किया जा चुका था जिसने उसे नये अस्त्रों के निर्माण का समस्त ससाधन एव वातावरण उपस्थित

किया।

फुट नोटस्

1. रामचरन दास द्वारा लिखित 'सुखदेव भगत की जीवनी' लोक धारा प्रकाशन, छपरा से प्रकाशित, पृष्ठ- 20

2. वही, पृष्ठ- वही

3 घथुरी टोला वलिया जिले के सुरेमनपुर तहसील में अवस्थित है

4. रामचरन दास द्वारा लिखित 'सुखदेव भगत की जीवनी' लोक धारा प्रकाशन, छपरा से प्रकाशित,पृष्ठ- 4

5. वही, पृष्ठ- वही

6. वही, पृष्ठ- वही

7 वही, पृष्ठ- वही

8 वही, पृष्ठ- 5

9. वही, पृष्ठ- 11

10 उनके शिष्य रामाशकर मल्लाह का साक्षात्कार 'ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 5 में ध्वन्याकित, सकलन- व्यक्तिगत।'

11. वही

12 रामचरन द्वारा लिखित 'सुखदेव भगत की जीवनी' लोक धारा, छपरा पृष्ठ 6

13. वही, पृष्ठ- 38

14. सुजी थारू का नवीन शोध अध्ययन, बूमेन राइटिंग इन इण्डिया (ओ0 यू0 पी0) पृष्ठ 155

15. वही, पृष्ठ- वही

16. कृष्ण प्रसाद का 'लोक का शास्त्र' भूमिका प्रकाशन विदिशा, म0 प्र0, पृष्ठ 26

17. वही, पृष्ठ- वही

18 वही, पृष्ठ- वही

19 डॉ0 राम विलास शर्मा राज़कमल प्रकाशन, पृष्ठ

20 उनके शिष्य रामाशकर मल्लाह का साक्षात्कार 'ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 5 में ध्वन्याकित, सकलन- व्यक्तिगत।'

21. अन्तोनियो ग्राम्शी, सेलेक्सन फ्रॉम द प्रिजन नोट बुक्स, सम्पादित, क्विन्टिन होरे इन्टरनेशनल पब्लिशर्स, दसवाँ सस्करण, 1989 पृष्ठ 165

22. वही, पृष्ठ- वही

23 लोक रचनाओं में, मुहावरों एव कहावतों में लोक का राष्ट्रीय चेतना से इतना सघन सम्बन्ध दिखायी पड़ता है, इसलिए इसकी राजनीतिक अभिव्यक्ति भी अत्यत सघन हुई है, इस सम्बंध में इतिहासकारों द्वारा कृषक आन्दोलनों पर किया गया कार्य द्रष्टव्य है। प्रो0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, द असेडेन्सी ऑफ कॉग्रेस इन यू0 पी0, (ओ0 यू0 पी0) रणजीत गुहा, एलिमेन्ट्री आस्पेक्ट ऑफ पिजेन्ट इन्सर्जेसी इन इण्डिया (ओ0 यू0 पी0) और सर्वाल्टर्न स्टडीज छः खण्ड तथा कपिल कुमार का अवध के किसान विद्रोहों पर कार्य (पिजेन्ट इन रिवोल्ट (मनोहर)

24 प्रो0 सुधीर चन्द्र का शोध पत्र लिटूंचर एण्ड चेन्जीग सोशल कॉन्शसनेस, द इण्डियन हिस्टॉरिकल रिव्यू, खण्ड 6, न0 1-2

25. प्रो0 के0 एन0 पणिक्कर के नवीन शोधपत्र 'कल्चर एण्ड आइडियोलॉजी' कॉन्ट्रडिक्शन इन इन्टेलेक्चुअल ट्रान्सफॉर्मिशन ऑफ कॉलोनियम सोसायटी इन इण्डिया में पुनर्जागरण कालीन सामाजिक कार्यकर्ताओं के सास्कृतिक एव वैचारिक परिवर्तन का अध्ययन

26. शिवनारायणी सम्प्रदाय के भजनों में निगुर्ण एवं दुख का सगीत सुनाई पड़ता है

27. सुखदेव भगत के भजनों में रहस्यात्मक बिम्ब यथा, जीव हमार घड़ा, ओकरा के फोरे

वाला कौन ? ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 6 में सकलित सुखदेव भगत के भजन, सकलन-व्यक्तिगत

28 रामचरनदास द्वारा लिखित 'सुखदेव भगत की जीवनी' लोकधारा प्रकाशन, पृष्ठ 20

29. वही, पृष्ठ- वही

30. पडित गगाशरण मिश्र द्वारा लिखित लोकज्ञान में पृष्ठ 34

31 सुखदेव भगत के प्रमुख शिष्य सोहनराम की स्मृतियों पर आधारित, सुखदेव भगत के बारे में सस्मरण कैसेट न0 7, सकलन व्यक्तिगत

32. वही, पृष्ठ- वही

"गगा किनारे एक तिवई, गगा से अरज करे हे

गगा मत रोक .S, लाल के राह

पार तुहू जाय देहुँ हें।"

33. वही, पृष्ठ- वही

34. वही, पृष्ठ- वही

35. वही, पृष्ठ- वही

36. वही, पृष्ठ- वही

37 वही, पृष्ठ- वही

38. लोकगीत और इतिहास ओरन हिस्ट्री कैसेट न0 1, सकलन व्यक्तिगत

39. सुजी थारु का 'वूमेन राइटिंग' इन इण्डिया (ओ0 यू0 पी0) 1990, पृष्ठ 154

40 सुमन्त बनर्जी का मार्जिनलाइजेशन ऑफ वूमेन पॉपुलर कल्चर इन नाइटिंथ सेन्चुरी बगाल, सागरी और वैध द्वारा सपादित 'इन रिकास्टिग वूमेन' में सकलित पृष्ठ 134

41. वही, पृष्ठ- वही

42. वही, पृष्ठ- वही

43. सूजीथारु 'वूमेन राइटिग इन इण्डिया (ओ0 यू0 पी0) पृष्ठ 155'

44. रामचरन दास द्वारा लिखित सुखदेव भगत की जीवनी लोकधारा, पृष्ठ 3, भूमिका

45 सोहनराम का साक्षात्कार, ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 7, सकलन व्यक्तिगत

46. वही, पृष्ठ- वही

47 विधापत लोकगीतों का कैसेट- वीनस से

इसी समस्या पर भोजपुरी के प्रसिद्ध नाटककार भिखारी ठाकुर के अनेक नाटक केन्द्रित है

48 ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 6, संकलन व्यक्तिगत

49 रामचरनदास द्वारा लिखित, सुखदेव भगत की जीवनी लोकधारा प्रकाशन, पृष्ठ 22

50 ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 6, में सोहनराम का संकलन, सकलन व्यक्तिगत

51 वही, पृष्ठ- वही

52 जवाहर प्रसाद, लोक प्रतीकों की व्याख्या भोजपुर कठ- 1988 अक 5

53 ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 6, सकलन व्यक्तिगत

पंचम अध्याय

विरचना का काल (1900-1920)
लोक संस्कृति में स्वीकार और बहिष्कार
निर्धिन राम की गाथा

इस अध्याय को विरचना का काल इसलिए कहा गया है क्योंकि इस काल खण्ड में लोक में अपनी स्वय के चेतना की विरचना की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। यह विरचना पूर्व निर्मित अवधारणाओं, पूर्व के निर्णयों, कृत्यों एव क्रियाओं का भी हो सकता है। इस काल खण्ड में लोक में स्वीकार के बाद मोहभग की प्रक्रिया से गुजरता हुआ बहिष्कार की ध्वनि सुनाई पड़ती है। इतिहास के अधोलोक की इस ध्वनि को सुनने के लिए हमें अपने बौद्धिक, सस्कारगत ऊचाई से नीचे उतर कर कान लगाकर सुनना होगा अन्यथा इस मध्दिम किन्तु इतिहास की सतत अनुगूँज को हम सुन नही पायेंगे। यह अध्याय इस परिकल्पना के साथ निर्धिन राम पर केन्द्रित है।

लोक में अपनी उपनिवेशविरोधी चेतना के निर्माण के प्रथम चरण में जहाँ इस विरोधी एवं विदेशी तत्व के अपने अनुभव जगत में हस्तक्षेप पर स्वतः स्फूर्त प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है। वहीं दूसरे चरण में वह इस हस्तक्षेप के प्रतिरोध में अपने समानार्थियों के तलाश में अपनी स्वयं की चेतना की विरचना की प्रकिया से गुजरता हुआ प्रतीत होता है। यह विरचना की चेतना, विज्ञान की शब्दावली में, रचना का ही एक गतिमान रूप है। या यूं कहें रचना का ही नैरन्तर्य है।

जीवन वृत्तः-

निर्धिनराम जाति के मोची थे। जिसे भारतीय समाज में सवर्ण शासित मनोवृत्ति द्वारा निर्मित जातियों की शब्दावली में चमार कहा गया है, महान परंपरा के सांस्कृतिक प्रभुत्व में जिसकी सामाजिक अवस्थिति अस्पृश्य की मानी गयी है तथा जिसके लिए स्थानीय भाषा में अछूत शब्द प्रचलित है। उनका जन्म 1858-1925 ई0 में शाहाबाद जिले के जनईडीह ग्राम में हुआ था।[1] पिता का नाम- गगाविसुन, माता- दौलतिया, भाई में अकेले। स्कूली शिक्षा न के बराबर थी किन्तु स्वाध्याय एवं रुचियों से लिखने पढ़ने की क्षमता का उन्होंने व्यापक विकास कर लिया था। इस कार्य में पिता गंगा विषुन से उन्हें सहायता मिली थी। पुश्तैनी पेशा था जूता बनाना। गॉव में तो देशी जूता बनाते थे, 1880 में 22 वर्ष की उम्र में आसाम गये तो चाय बागान के तत्कालीन अग्रेजी बाबुओं के लिए क्रुम का जूता बनाने लगे। पिता गंगा विषुन पहले से ही आसाम में जूता व्यवसाय से जुड़े हुए थे। निर्धिन राम आसाम से गॉव लौट आए। गांव लौटने का कारण था-- "पानी रास न आना।[2]

पानी रास न आने के लोक मुहावरे का अर्थ मोटे तौर पर पर्यावरण रास न आना से जुड़ा हो सकता है। पानी रास न आने पर भी वे 10 वर्ष तक कैसे रह गए ? पानी रास न आने का अर्थ भोजपुरी में 1890 ई0 के आसपास कुछ और तो नही था ? इसके अर्थ ध्वनि में तत्कालीन अंग्रेज बाबुओं का दुर्व्यवहार भी तो कहीं शामिल नहीं था ? इन सारे प्रश्नों पर उनसे सम्बधित जीवित लोग चुप रह जाते थे और वर्तमान में यहां पर ये सभी प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते है।

औपनिवेशिक काल में आसाम से लौटे इस गॉव के जीवित मोचियों से बात करने पर यह तथ्य स्थापित होता है कि उन्हें वहाँ गोरे साहबों के दुर्व्यवहार एवं कोड़े सहने पड़ते थे।[3] अमलेन्दु गुहा के अध्ययन "प्लेन्टर्स राज टू स्वराज" से भी यह तथ्य उद्घाटित होता

है कि आसाम में अंग्रेजी साहबों का व्यवहार भारतीय कर्मचारियों एवं वहाँ के जन जीवन में कार्यरत भारतीय जनों के विभिन्न सवर्गों के प्रति कितना अमानवीय एवं घृणास्पद था।

निर्धिन राम का सांस्कृतिक सन्दर्भः-

निर्धिन राम के लोकायत में देसी जूता बनाना, शिवनारायणी भजन गाना, अपनी स्मृतियों में अकित रामायण की कथा को कवित्त में जोड़ जोड़ कर सुनाना सम्मिलित था। उन्होंने यहाँ आकर मॉस मछली खाना छोड़ दिया था। तुलसी की कठी धारण कर लिया था एवं ब्राम्हणी सस्कृति के अनेक पक्षों से अपना सम्बध जोड़ लिया था। जब गाँव के तिवारी जी लोगों में से कोई उन्हें निर्धिन बाबा कह देता तो बहुत खुश् होते, निर्धिनवा कहने पर भीतर ही भीतर आहत।[4] उन्हें जब भी मौका मिलता ब्रम्हटोला चले जाते और वहाँ दुआरों पर गीता रामायण पर होने वाली वार्ताओं को सुनते।[5] इन वृतान्त परक सूचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि निर्धिन राम में तत्कालीन बड़ों की सस्कृति से जुड़ने की चाह रही होगी। बड़ों की संस्कृति से जुड़ने की आंकांक्षा अपने अर्थ वलय में उनकी अछूत स्थिति से मुक्ति की भी आकांक्षा लिए हुए हैं। अछूतपन से मुक्ति की इस आकांक्षा ने उन्हें बड़ों की तरफ प्रस्थान के लिए बाध्य किया। और बड़ों के इसी संसर्ग ने उन्हें कांग्रेस से जोड़ा। कांग्रेसी इसलिए बने कि लोग उन्हें गाली देना छोड़ देंगे, चमार कहना छोड़ देंगे।[6] साथ ही उन्हें सम्मान भी मिलेगा।[7] इस प्रकार निर्धिन राम तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में चमार से भिन्न एक काग्रेसी के रूप में एक नयी भूमिका एवं पहचान प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त दिखायी पड़ते हैं। किन्तु भारतीय इतिहास की गतिकी में यह सभव न हो सका और अन्ततः उन्होंने 1923 ई0 में 5 वर्ष बाद कांग्रेस पार्टी छोड़ दिया। यूँ उनके काग्रेस परित्याग की घटना में असहयोग आन्दोलन की वापसी का आक्रोश भी रहा होगा। किन्तु अपनी अछूत स्थिति से मुक्ति न मिलने के दुख को उन्होंने अपनी प्रतिक्रियाओं में बार बार अभिव्यक्त किया है।[8] इसका कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

"हमनी के बेरिया निठुर भइले बनवारी।

निठुर भइले बनवारी, निठुर भइले बनवारी।

निठुर भइले बनवारी।

हमनी के बेरिया निठुर भइले बनवारी।

एहि चरन से अहिला के तरल S, सेहु गौतम के नारी

विप्र सुदामा के दरिद्र हटवल S...

मड़ई से कइल S अटारी

हमनी के बेरिया निठुर भइले बनवारी।

हिन्दी में इन पक्तियों का भावार्थ इस प्रकार किया जा सकता है-

हमारे सदर्भ में बनवारी निष्ठुर हो गये। हालॉकि उन्होंने इसी चरन से अहिल्या को मुक्ति दी जो गौतम ऋषि की नारी थी। विप्र सुदामा की गरीबी इन्होंने ही मिटाई उनकी मड़ई (कुटिया) को महल में परिवर्तित कर दिया, किन्तु हमारा जब मामला आया तो निष्ठुर हो गये। इन पक्तियों में करुणा के साथ-साथ्थ अछूत (उत्पीड़ित-वचित) मन में निहित पीड़ा एव प्रतिरोध दोनो मुखर हैं।

"अछूत" प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति और इसका अधीनस्थ संस्कृति से अन्तः सम्बन्ध

अब तक के अध्ययनों में इन सामाजिक सवर्गों के लिए "अछूत" शब्द प्रयुक्त होता रहा है। इन वर्गो को सवर्ण शासित शब्दावलि अगर अछूत सबोधन देती है तो हम नये इतिहास के निर्माण में लगे लोग भी इन्हें अछूत कहें, यह कहॉं तक उचित है। इसीलिए यहॉं हम "अछूत" शब्द को इन्वर्टेड कॉमा के मध्य रख रहे हैं। इसके लिए किसी भी सर्वग्राही शब्द के अभाव में हम उत्पीड़ित - वचित शब्द का प्रयोग भी प्रस्तावित कर रहे हैं। दलित शब्द महाराष्ट्र के अछूतों के सम्बध में प्रयुक्त हुआ है किन्तु भोजपुरी क्षेत्र के निरक्षर

उत्पीड़ित लोगों के सदर्भ में यह शब्द सभी प्रवृत्तियों को उजागर करने में असमर्थ प्रतीत होता है। "अछूत" वर्गों के प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति से सवर्ण वर्गों की प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति भिन्न रही है। सवर्ण वर्गों की प्रतिक्रिया में जहाँ अति आत्म विश्वास, उछाह, गर्वबोध, उन्माद के तत्व पाये जाते है वही "अछूत" (उत्पीड़ित-वचित) वर्गों के प्राप्त साहित्य में करुणा, दारुण, दैन्य के तत्व मिलते हैं। इन दोनों तरह के अन्तरों को भक्ति साहित्य से लेकर दोनों वर्गों में गाये जाने वाले सस्कार गीतों में देखा जा सकता है। यूँ तो करुणा एक शाश्वततत्त्व है जो दोनों सास्कृतिक सवर्गों की अभिव्यक्तियों में प्राप्त होता है। किन्तु शिवनारायणी गीतों की करुणा एव सवर्णघरों में गाये जाने वाले भजनों में प्राप्त करुणा में पर्याप्त विभेद स्पष्ट रुप से अभिव्यक्त होता है।[9] यहा यह कहते हुए हमारा आग्रह है कि कृपया अछूत वर्गों की करुणा एव दैन्य को आत्मदया न समझा जाय। यहाँ ये करुणा एव दैन्य सामाजिक विभेद के कारण उत्पन्न होते हैं। अत उनमें विभेद और विभेदों के मध्य द्वन्द की ध्वनियाँ सदैव गूजती रहती हैं। ये करुणा एव दैन्य निम्न वर्गीय चेतना में निहित प्रतिरोध का प्रथम चरण होते है। इस प्रकार के करुणा एव दैन्य के क्रान्तिकारी रुपान्तरण के अनन्त उदाहरण हमारे इतिहास में निहित हैं।[9] इस करुणा एवं व्यथा के स्वर को चेतना के स्तर पर एक स्थायी तत्व बनाने में निम्न वर्गों में प्रचलित एवं सक्रिय अधीनस्थ सांस्कृतिक उपादानों की भूमिका का अध्ययन भी आवश्यक है। वस्तुतः "अछूत" वर्गों में (विशेषकर हरिजन में) अधीनस्थ स्वर के सास्कृतिक उपादान प्रयुक्त होते हैं। एक अछूत बालक अपने जन्म से मृत्यु तक करुणा, वेदना एव व्यथा की गूजों, छन्दों, स्वरों एव टेकों से युक्त सस्कारगीत सुनता है। अपनी इस सस्कारगत पर्यावरण में वह इन्हीं तत्वों से युक्त संवाद का माध्यम भी विकसित करता है। वह अपने प्रतिरोध की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए भी व्यथा के तत्व का सार्थक एवं सक्षम उपयोग करता है।[10] वह आगे चलकर इन्हीं तत्वों को अपना क्रान्तिकारी सास्कृतिक औजार भी बनाता है। व्यथा के नीचे तक फैली हुई जड़ो से पैदा हुआ प्रतिरोध तात्कालिक प्रतिक्रिया स्वरुप पैदा हुए प्रतिरोध से ज्यादा गम्भीर, स्थायी एव परिवर्तनकामी होता है।[11] इस प्रकार अधीनस्थ सस्कृति की

करुणा एव व्यथा में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए असीम सभावनाएं विद्यमान है।

अधीनस्थ सस्कृति की प्रभुत्व की संस्कृति से वाद विवाद एव संवाद का भी एक विशिष्ट चरित्र है। अन्तःसवाद के स्तर पर वह जिन प्रतीकों एव शब्दावलियों को प्रभुत्व की सस्कृति से ग्रहण करती है, अपने ढग से टोन के स्तर पर परिवर्तित कर देती है। यथा प्रभुत्व की सस्कृति का "गुरू" चमारों के मध्य "गुरुआ" हो जाता है।[12] उनके गुरू के समक्ष वे अपने गुरुआ को रखते हैं। गुरू और गुरुआ शब्द की सस्कृतनिष्ठता और अपभ्रशपन के अन्तर तथा दोनों के ध्वनिनाद से ही दोनों की वर्गीय स्थति स्पष्ट हो जाती है।

अधीनस्थ सस्कृति के रचनात्मक रुपों (लोक गीतों, कथक्कड़ियों) में निहित रहस्यमयता की तार्किक और बौद्धिक व्याख्या भी हमें नये निष्कर्षों तक ले जाती हैं। अधीनस्थों की सस्कृति को प्रभुत्व की संस्कृति द्वारा उपस्थित किए गए चुनौती के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। इसके लिए प्रायः वह करुणा, वेदना, व्यथा तथा रहस्यात्मकता के रुप का इस्तेमाल करती है। इतिहास के अधोलोक की यह रहस्यात्मकता प्रभुता की संस्कृति से उसके मुकाबले की एक तकनीक है जो तत्कालीन सामाजिक ढांचों में उनकी सामाजिक स्थिति से ही पैदा होती है। प्रभुता की संस्कृति के अनेक प्रश्नों का उत्तर वह रहस्य में ले जाकर देती है। रहस्य की भाषा में ही उसके अनेक तर्कों के समानान्तर वह नये तर्क खड़ा करती है। यहाँ रहस्य में जाना प्रभुता के सास्कृतिक आतक में उसकी आवश्यकता भी है और मजबूरी भी। इस सास्कृतिक दिशा में बौद्धिकता एवं ज्ञान के देश से निष्कासित इस निम्न वर्ग की रचनात्मक बिम्ब योजना एव प्रतीकात्मकता देखकर कोई भी मुग्ध हो सकता है।[13] यह हमारे भीतर एक नये तरह की सौन्दर्य चेतना को पैदा करती है। निर्धिन राम में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। वे अपने रामायण में कई बार अत्यत रहस्यात्मक वृत्तों की रचना करने लगते हैं।

निर्धिन राम की चेतना इसी अधीनस्थ सस्कृति की उपज है। उनकी स्मृति में ये सम्पूर्ण गूज, धुन, छन्द, राग एव शब्दावलियाँ गूंज रही होगी। जिन्हें उन्होंने बचपन में सुना था और इन्ही सास्कृतिक उपादानों से उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम भी विकसित किया। निर्धिन राम के सांस्कृतिक संस्कार की अधीनता को समझने के लिए यहाँ हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। वे अपने रामायण में अपनी चेतना को व्यक्त करने के लिए हेदव, विधना, विधाता, डिहवार, प्रभु सबोधनों का इस्तेमाल ज्यादा करते है। हे राम, हे भगवान, हे कृष्ण, हे हनुमान जैसे प्रायः महान परम्परा में प्रयुक्त होने वाले सम्बोधनों का प्रयोग न के बराबर करते हैं। हालाँकि महान परम्परा और अधीनस्थ परम्परा में अन्तःसवाद सतत क्रियाशील रहता है, इसका ऐसा विभाजन सम्भव नही फिर भी उनकी शब्दावलियाँ और रुपक शिवनारायणी और रैदासी भजनो से उभरे हैं। वे बार बार करम का फूटना, करम का छोटा होना को सम्पूर्ण कष्ट के कारण के रुप में प्रस्तुत करते हैं। इससे अधीनस्थ सस्कृति के मनोविज्ञान को समझा जा सकता है। इस सपूर्ण सास्कृतिक सदर्भ और सरचना को समझे बिना निर्धिन राम की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने से गलत निष्कर्ष पर पहुंचने की सभावना व्याप्त है। निर्धिन राम की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए हमारे पास दो प्रमुख श्रोत है-

प्रथम - अपने क्षेत्रीय अध्ययनों के दौरान प्राप्त निर्धिन राम द्वारा लिखित रामायण की अप्रकाशित पाडुलिपि।[14]

द्वितीय- निर्धिन राम के सम्बन्धियों एवं उनके जीवन काल में उनसे जुड़े लोगों का ध्वन्याकित साक्षात्कार।

निर्धिन राम का रामायण:

निर्धिन राम का रामायण वस्तुतः रामायण नही है न अपने विषय वस्तु में, न ही अपने

रचनात्मक स्वरुप में इसे रामायण कहा जा सकता है। अब तक रामायण के जितने भी अभिजन एव लोकरूप[15] विद्यमान है उनकी परम्परा में इसे कहँा रखा जाय ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसमें न तो रामचरित मानस की तरह सटीक चौपाइया एव दोहा छन्दों का प्रयोग किया गया है। न ही पूरी कथा राम केन्द्रित है। अन्य रामायणों से इसका साम्य दो कारणों से नही बैठता। एक तो यह पूरी कथा एक नायक पर केन्द्रित नही है। दूसरे इसमें धुन, लय, चौपाइयों के एक रेखीय विकास के अनुशासन का निर्वाह नही किया गया है। पुनः इसमें कोई एक कथा है भी नहीं। फिर इसे भोजपुरी लोक चेतना में रामायण क्यों कहा जाता है ? वस्तुतः लोक वार्ताओं में किसी भी मोटे ग्रन्थ के लिए एक प्रतीकात्मक शब्द के रूप में "रामायण" का प्रयोग किया जाता है। इसके अधिकाश भाग में चौपाइयों के छन्द में तुक्कड़ियाँ जोड़ी गयी हैं जो गाने पर रामचरित मानस की चौपाइयों जैसा ही प्रभाव पैदा करती हैं। अपने मूल रूप में यह ग्रन्थ अव्यवस्थित छन्दों - तुक्कड़ियों, कुछ मुहावरों इत्यादि को समाहित किए हुए हैं। इसमें कई जगह गद्य के रूप में बातें कही गयी हैं। लिखते - लिखते अपने रौ में बहकर लेखक अपनी जीवनी, अपना दुख भी लिखने लगता है। कही कही वह राम का सबोधन करता है, कहीं कही वह रैदास से बातें करने लगता है। इस प्रकार अपने ढाँचे में यह ग्रन्थ एक अछूत मन की स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्ति के रूप में दिखायी पड़ता है। कहीं-कहीं वह लाट साहब के बारे में लिखने लगता है तो कहीं अपने पिता के बारे में।

राम से सम्बधित कुछ पदों का स्वरुप देखें-

राम राम हम राम पुकारी। हम पर विपत पड़ी बड़ भारी।
राम नाम गुन बरनै लागा। आपन हिया के दुख भागा।

गाधी के सम्बध में एक पद देखें-

"गाधी में गुन बहुत है सदा लीजै नाम

दीन दुख दरिद्र भगावै और बनावै काम"

आगे गाँधी का एक चित्रात्मक छन्द देखें-

"हाथ में लाठी सोहे कण्ठ में पुकार।

हो मेरे गाँधी कैसे मैं भव करुंगा पार।।

राम से सम्बंधित कुछ और छन्द दृष्टव्य हैं-

राम संग मै सोहऊं कैसे। सागर बीच कमल हो जैसे

"सुनभइल. S, सुनभइल S, सुगना बिन बगिया सुन भइल. S,

उड़के गईल राम बिन सुगना, न जाने देव कहँा रखिहें।"

"एही दुनियाँ में भय भारी, हम आ बइठनी हरि के द्वारी।"

"अब राम मोरे रक्षा करीहें।

ब्याधा तान तान तीर मारी।

एही दुनिया में भय भारी।

गाँधी जी से सम्बंधित कुछ और पद देखें-

"गाँधी के नाम सुन, हुलसेला जियरवा

सुन रे सगिया।

गाँधी बाबा से लागल अनुराग

सुन ने संगिया

दिन दुपहरिया में निरखेला नयनवा

सुन रे संगिया।

गाँधी बाबा के आवन के राह

सुन रे संगिया।"

इस प्रकार यह ग्रन्थ अव्यवस्थित छन्दों में एक पीड़ित मन की कथा है। इसमें कवि स्थापित छन्दों को अचेतन ढंग से तोडता है, उसमें कुछ नया जोड़ता है, जब छन्दों की सीमा में अपनी बातें कंहने में वह असमर्थ होने लगता है तो वह गद्य में उतर आता है। इस प्रकार यह ग्रन्थ अभिव्यक्ति की प्रचण्ड इच्छा को भी व्यक्त करता है जो महाकाव्य के स्वरुप को तोड़ देता है।

भाषा के स्तर पर भी इसमें एकरुपता नहीं है। कहीं भोजपुरी में, कहीं भोजपुरी मिश्रित खडी बोली में, कहीं कहीं रामचरित मानस की अवधीयुक्त भाषा में। प्राय: रामचरित मानस की आधी चौपाइयों में स्वनिर्मित तुकों को जोड़ना आदि आदि।

लिपि कैथी है। इसे पढने वाले अब नाम मात्र के ही बचे हैं।[15] पुन. लेखक के अक्षर एवं शब्द लिखने के अपने ढंग से भी इसे पढने में कठिनाइयां होती हैं। यह कागज पर लिखा हुआ एवं जीन[16] से मढ़ा हुआ है।

यह ग्रन्थ कब लिखा गया इसमें कहीं उल्लिखित नहीं है। किन्तु उनके सम्बंधियों से किए गए साक्षात्कार से यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ उनके जीवन के अंतिम दिनों में लिखा गया होगा। इसमें जीवन के सान्ध्य काल की पीड़ा भी परिलक्षित होती है।

अन्य सुनियोजित एवं सजग रचनाकारों की तरह इसके प्रथम पृष्ठ पर ही रचनाकार का नाम नहीं लिखा है, किन्तु छन्दों में कई जगह पर रचनाकार अपने नाम का उल्लेख करता है।

"अछूत राष्ट्रवाद का ढाँचा:

यहाँ हम "अछूतों" की अन्तः चेतना में राष्ट्रवाद के ढाँचे एव स्वरुप को समझने का प्रयास निर्धिन राम के इतिहास के माध्यम से कर रहे हैं। अब तक "अछूतों" के मध्य राष्ट्रवाद का अध्ययन न के बराबर हुआ है। जो हुआ भी है उसे या तो सस्कृतिकरण की प्रक्रिया तक पहुँचाकर छोड़ दिया गया है।[17] या तो महाराष्ट्र के महारों एव अम्बेडकर के इतिहास के आस पास रखा गया है।[18] जबकि भोजपुरी क्षेत्र में अछूतों की अन्तः चेतना की बुनावट एव उनके मध्य का राष्ट्रवाद तुलनात्मक रुप से महाराष्ट्र के ज्यादा शिक्षित और चेतन महार समुदाय से भिन्न रहा है एव निरा सस्कृतिकरण की प्रक्रिया से आगे बढ़ा हुआ भी। इस क्षेत्र में अध्ययन करते हुए इस समुदाय में सास्कृतिक चेतना के राजनीतिक चेतना में एव राजनीतिक चेतना के सास्कृतिक चेतना में परावर्तन के अत्यन्त सूक्ष्म तथा सदैव सक्रिय प्रक्रिया पर ध्यान रखना हमें आवश्यक लगा है।

औपनिवेशिक काल में अछूतों की चेतना एव आन्दोलन पर हुए अध्ययनों से जो स्वरुप उभरता है उनमें से कुछ को प्रतिदर्श (टाइप) के रुप में हम यहाँ उपस्थित कर रहे हैं। इनसे निर्धिनराम के अध्ययन की भिन्नता एव वैशिष्ट्य स्पष्ट होगा।

केरल में इझाबास एक अछूत जाती है जिसने बीसवी सदी के प्रारम्भ से ही अपने सघर्ष के स्वरुप निर्मित करने के क्रम में ब्राह्मण अधिपत्य पर आक्रमण, मदिर प्रवेश का आन्दोलन, अपने कुछ संस्कारों को ब्राह्मणीकृत करने का प्रयास किया। बाद में उन्होंने इस सांस्कृतिक चेतना का राजनीतिकरण करते हुए अपने को साम्यवादी आन्दोलन से जोड़ लिया। नम्बूदरीपाद ने अपने अध्ययन में इनके द्वारा निर्मित जाति सघों को "सामन्त वाद के विरुद्ध सघर्ष का प्रथम स्वरुप कहा है।[19]

दक्षिण तमिलनाडु पर हार्डग्रेव के प्रसिद्ध अध्ययन से जो इतिहास स्पष्ट होता है उसके अनुसार दक्षिण तमिलनाडु के एक अछूत कृषक जाति जिसे मूल रूप में शानानस कहा जाता था ने अपना विकास एक व्यापारिक जाति के रुप में किया तथा अपने को क्षत्रिय जाति से जोड़ा। इस नये रुप में उन्हें नाडार कहा जाने लगा।

उत्तरी तमिलनाडु में पालिज नामक अछूत जाति ने भी अपने सघर्ष के अस्त्र के रुप में संस्कृतीकरण का उपयोग किया।[21]

महाराष्ट्र के महारों ने भी सस्कृतीकरण से आरम्भ हुए अपने सघर्ष को अधिक नौकरियों की प्राप्ति से जोड़ लिया।[22]

इन सारे अध्ययनो में हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी उत्तरी भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश के जौनपुर पर बर्नाड कोहन द्वारा किया गया अध्ययन उपस्थित है। अपने अध्ययन में श्री कोहन इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि यहाँ पर चमार जाति के लोग मूलतः छोटे और भूमिहीन किसान थे, राजपूत सामन्तों से मुक्ति के अपने सघर्ष के रुप में उन्होंने शिवनारायणी सम्प्रदाय को अपनाया तथा अपने सामाजिक स्तर को बढ़ाने के लिये मास न खाने जैसे ब्राह्मणीय स्वरूपों को ग्रहण किया।[23] अध्ययन के इन प्रतिदर्शों के मध्य निर्धिनराम के सदर्भ को अब हम समझने का प्रयास करते हैं। निर्धिनराम के आसाम से लौट आने के कारण-रुप में प्रचलित मुहावरा "पानी रास न आना" की व्याख्या करते हुए इसी अध्याय के आरम्भ में हमने पाया है कि पानी खराब होने का भावार्थ निर्धिनराम के सदर्भ में द्विअर्थी है। इसका अर्थनाद वास्तविक अर्थों मे पानी खराब होने से लेकर अग्रेजों के व्यवहार का जूता बनाने वालों के प्रति खराब होने तक फैलता है। 1880 ई0 में गॉव आने के पश्चात उनके सघर्ष का प्रथम सोपान भी प्रभावी सस्कृति से अधीनस्थ सस्कृति के सवाद एव विवाद के रुप में प्रस्फुटित होता है। जिसकी व्यावहारिक परिणति उनके द्वारा

मांस मछली खाना छोड़ देना, कंठी धारण करना एवं गीता रामायण की कथाओं एवं चौपाइयों का श्रवण करना, उन्हें स्मृति में रखना तथा लोगों के बीच उन्हें सुना सुना कर अपने को ब्राह्मणीकृत महसूस करने के रुप में हुआ।[24] हालाँकि उनके द्वारा कही सुनी कथाए वैसी ही नही थी जैसी मूल रुप में रामायण में थी। अनेक कण्ठों से होकर उन तक पहुचने के कारण उनका काफी कुछ निम्न वर्गीय लोकचेतना द्वारा खण्डित भी किया गया था तथा काफी कुछ उनमें जोड़ा भी गया।[25] किन्तु इस पूरे सदर्भ में केन्द्रीय वस्तु यह है कि गॉव आकर निर्धिनराम ने सामन्ती - सस्कृतिक एव सामाजिक आर्थिक दमन के विरुद्ध की सस्कृति जिसकी प्रथम अभिव्यक्ति इस क्षेत्र के चमार जाति का शिवनारायणी पन्थ स्वीकार करना था, के रुप में ही प्रारम्भ किया। यहाँ पर अधीनस्थ सस्कृति प्रभावी सस्कृति के विरुद्ध प्रतिरोध तो कर रही है किन्तु यह प्रतिरोध प्रभावी सस्कृति की दिशा में ही उसे आगे बढ़ाता है, न कि इस प्रतिरोध की चेतना को विद्रोह की चेतना से जोड़ता है। निर्धिनराम का बार बार बड़ों की सगति में रहने का अतिरिक्त प्रयास उनकी निम्न वर्गीय कुण्ठा को भी प्रदर्शित करती है। मौखिक स्रोतों से एक अन्य रोचक किन्तु दारुण तथ्य सामने आता है कि निर्धिनराम का मूल नाम निर्धिन नहीं था। मूल नाम था - "द्वारिका"। किन्तु बाद में उन्होंने अपना नाम निर्धिनराम रखा। निर्धिन का अर्थ होता है - वह जिससे घृणा न किया जाये। उन्होंने अपना नाम निर्धिन क्यों रखा ? उन्हें अपने को घृणा न करने योग्य साबित करने की आवश्यकता क्यों हुई ? कहीं यह भी प्रवृत्ति उनकी निम्न सामाजिक अवस्थिति की उपज तो नही थी ? सभी प्रश्न अपने आप में स्वय उत्तर भी हैं तथा एक बिडम्बना को स्पष्ट करने वाले तथ्य भी।

इस प्रकार निर्धिनराम का राष्ट्रवाद उस समय सन्दर्भ में अपनी अछूत स्थिति से मुक्ति का राष्ट्रवाद था। जिसकी अभिव्यक्ति वे बार बार अपने रामायण में करते हैं।

"निर्धिनवा" और "चमार" कह देने पर वे दुखी हो जाते और दो दो दिन तक खाना

नही खाते। ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 1 में किदारथ राम के संस्मरण से यह स्पष्ट है कि इस श्रेणिबद्ध समाज में सवर्ण शब्दावली एवं मुहावरे उन्हें कितने सालते थे। यह प्रस्तावित किया जा सकता है कि उनकी प्रथम गुलामी उनकी अछूत स्थिति थी, दूसरी गुलामी अग्रेजों की गुलामी थी।[27] यहाँ तक कि 1917 में उनके काग्रेस सगठन की सदस्यता स्वीकार करने के पीछे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव तो था ही साथ ही "उस समय काग्रेसी बनना हमारे गाव में इज्जत की बात थी।[28] यहाँ उनके काग्रेसी बनने के पीछे सम्मान एव प्रतिष्ठा प्राप्त कर अपनी स्थिति से मुक्ति का भी प्रयास दिखायी पडता है।[29]

1922 ई0 में निर्धिनराम ने काग्रेस छोड़ दिया। 1922 ई0 में गाधी द्वारा असहयोग आन्दोलन वापस लेने पर कई लोगों ने काग्रेस छोड़ा होगा, फिर यहाँ निर्धिनराम के काग्रेस छोड़ने में विशिष्ठ क्या था ? वस्तुत. निर्धिनराम का काग्रेस छोड़ना सघटना के भीतर की उपसघटना है। इस उप संघटना के ढाँचे को समझने के लिए एक प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। प्रश्न है निर्धिनराम का काग्रेस से रिश्ता क्या था ? उनका काग्रेस से रिश्ता अपनी अछूत सामाजिक स्थिति से मुक्ति एवं अपनी ऊर्जा का गोरे साहबों के विरुद्ध प्रयोग करने वाले एक मच के रुप में था। उन्हें कांग्रेस के साथ जोड़ने वाले सूत्र में गांधी की माया छवि थी। अपने काग्रेस प्रवेश की घटना को वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते है-

अपने गाँव के शिवसरन तिवारी, रहलें काग्रेसी बड़ भारी
उहे हमरा के काग्रेसी बनाई, गाँधी जी के दुआरी पहुँचाई।[30]

अर्थात यहाँ गाधी के दुआर पहुचने की कामना ही उन्हें काग्रेस से जोड़ती है और काग्रेस से जोड़ने वाले हैं उन्ही के गावँ के एक काग्रेसी। उपलब्ध स्रोतों से गांधी जी एव निर्धिनराम के सम्बंधों का भी स्वरुप स्पष्ट हो जाता है। हालाँकि गाधी जी की चर्चा सम्पूर्ण ग्रन्थ में बहुत कम स्थानों पर हुई है। उनके लिए "हे बाबा", "सुन.S गाधी" "डिहवार" की तरह का सम्बोधन आया है। वे बार बार गाधी को एक ऐसे व्यक्ति के रुप

में देखते हैं जिनसे उनका अत्यन्त गहरा, रागात्मक एव अन्तरग सम्बन्ध रहा हो। जबकि मौखिक इतिहास के श्रोतों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने गाधी को देखा तो था किन्तु कभी उनकी मुलाकात नही हुई थी।[31] वस्तुतः गाधी के साथ निर्धिनराम का सम्बन्ध बहुत कुछ काल्पनिक था। वे उनके और अपने सम्बन्धों के बारे में झूठी कहानियाँ और गल्प गढ़ कर सुनाया करते थे। हमने उनसे सम्बधित लोगों से साक्षात्कार करके ऐसी अठाईस कहानियों का सकलन किया है।[32] उदाहरण के तौर पर उनमें से कुछ कहानियों का सार है कि-

1. एक दिन हम आरा काग्रेस कार्यालय गए थे वहाँ गाधी जी आये थे। उन्होंने देखते ही मुझे गले से लगा लिया। कहने लगे, क्या निर्धिन भाई बहुत दिन हो गये तुमसे मिले। एक दिन तुम्हारे घर चलना है।

2. ".एक दिन गाधी जी ने सभा के मच पर से ही हमको बुला लिया, उस दिन हम उनके साथ ही रहे। हम लोगों ने एक थाली में बैठकर चूड़ा दही खाया। रात भर खूब बाते करते रहे। आदि आदि।

3. आज पटना में काग्रेस की मीटिंग होनी थी। गांधी जी ने कहा बिना निर्धिन के मीटिंग कैसे होगी ? यह कहकर उन्होंने मीटिंग भंग कर दिया। राजेन्द्र बाबू को उन्होंने खूब डॉटा और कहा कि आपने निर्धिनराम को क्यों नही सवाद भेजवाया।

4. वे बार बार लोगों को अत्यन्त कथात्मक ढग से सुनाया करते थे कि अभी गांधी जी की चिट्ठी आयी है। उन्होंने मेरा हाल चाल पूछा है। चमर टोली के बारे में भी वे बहुत चिन्तित हैं। पेड़ - रुख, गलियों और नालियों के बारे में भी मुझसे पूछा है।

इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि गाधी जी के साथ उनका रिश्ता काल्पनिक एवं ख्वाबों का रिश्ता था। वास्तव में जो सच नही बन पाता वह कल्पना एवं ख्वाबों में परणित हो जाता है। और जिसे हम सच बनाना चाहते हैं वह भी पहले कल्पना एव ख्वाबों का ही रुप लेता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन राजनीतिक अभिजात्य ने तत्कालीन राजनीतिक ढांचे में अछूत निर्धिनराम को उचित जगह नही दी, जिसकी अपूरित अकांक्षा की पूर्ति निर्धिनराम ऐसी कथाएं गढ़कर करते हैं। वे गाधी जी से अपने सम्बन्धों की ऐसी कथा कहकर लोगों को यह दिखाना भी चाहते होंगे कि देखो ! मैं अछूत नही हूँ। मेरे साथ गाधी चूड़ा दही खाते हैं। देखो मैं तिरस्कृत नही हूँ। मुझे गाधी गले से लगाते हैं। यहाँ झूठ और इतिहास के अन्तः सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। वस्तुत· हम अपनी कुण्ठा भी अभिव्यक्ति झूठ बोलकर करते है। निर्धिनराम की यह कुण्ठा भी अछूत स्थिति की सह उत्पादन एव तत्कालीन काग्रेस द्वारा उचित स्थान न देने के कारण पैदा हुई थी। इस प्रकार गाधी से उनका रिश्ता काल्पनिक अधीनस्य वृत्तियों से पूरित निम्न की अभिजंन् के प्रति कुण्ठाजनित आकर्षण पर आधारित था।

1922 ई0 में निर्धिनराम ने कांग्रेस छोड़ दिया। उनके इस परित्याग को असहयोग आन्दोलन से जोड़ा जा सकता है। किन्तु निर्धिनराम के सन्दर्भ में यह परित्याग इतना सरल नही है। यह एक जटिल घटना क्रम है जिसको जटिल बनाने में एक अछूत मन का यंत्रशास्त्र कार्य कर रहा था। वे अपने रामायण में एक स्थान पर कहते हैं- क्या तुम डिहवार ! क्या हमारे नेता ! जो एक घाव भी ठीक न कर पा रहे हो।[33] यहाँ पर घाव न ठीक कर पाने में, देवत्व एवं नेतृत्व दोनों की असफलता का जिक्र करते हुए वे स्पष्ट रुप से गाधी के व्यक्तित्व के समक्ष एक चुनौती खड़ा करते हैं, साथ ही यही से उनके तत्कालीन मोहक गांधीवादी राजनीति के परित्याग का मार्ग भी दिखायी पड़ता है। यह घाव कोई शारीरिक घाव न होकर सामाजिक घाव है जो उनकी अछूत स्थिति से मुक्ति न दिला पाने के उनके स्वप्न के विखण्डन से प्रारम्भ होती है। यहाँ आप तुलसी की विनयपत्रिका को

याद करें। जहाँ वे अत्यन्त कारुणिक ढग से राम को इसी तरह की उलाहना देते हैं। निर्धिनराम के काग्रेस परित्याग की घटना उनके मोहभग की सह उत्पाद है। यह मोहभग राजनीतिक तथा सामाजिक दोनों अवस्थितियों में सक्रिय था।

निर्धिनराम की अछूत मन की प्रतिक्रियाओं में इस मोहभग की अभिव्यक्ति क्रान्तिकारी ढग से न होकर दारुण में जाकर अत्यत कारुणिक ढग से होती है। निर्धिनराम मोहभग के पश्चात काग्रेस, गाधी, समाज, राम, रैदास सबको गाली नही देने लगते। गुस्से की मुद्रा नहीं अपनाते बल्कि अत्यन्त कारुणिक प्रतिक्रिया की रचना करते हैं। इसका साक्ष्य उनका पूरा ग्रथ है। यहाँ करुणा एव दारुण की महाकाव्यात्मक अभिव्यक्ति आत्मदया के रूप में न होकर एक सच्ची क्रातिकारी चेतना के रुप में दिखायी पड़ती है जो पढने वाले के मन में तत्कालीन व्यवस्था के प्रति घृणा को पैदा करती है। अपने दुख में सबको शामिल कर क्रान्तिकारी स्थिति का निर्माण करती है।

इस प्रकार निर्धिनराम का राष्ट्रवाद बहुत कुछ कल्पना एवं स्वप्न में रचित राष्ट्रवाद था जिसे सच न होने दिया गया। इसे सच न होने देने की विडम्बना ही हमें एक नये इतिहास के निर्माण की ओर उन्मुख करती है।

फुट नोटस्

1. पिता गगा विषुन द्वारा पुश्तैनी कागजात पर प्राप्त उल्लेख से जन्म तिथि की प्राप्ति, मृत्यु की तिथि का निर्धारण पोता सियाराम एवं भतीजे किदारथ राम की स्मृतियों पर आधारित।

2. ओरल हिस्ट्री कैसेट इन 1 में ध्वन्यांकित।

3. वही न0 एच0 ऑफ एस0 1 से।

4. वही न0 1 में किदारथ राम का सस्मरण

5. वही।

6. चमार शब्द से जोड़कर लोक में कई गालिया एव मुहावरे आज भी प्रसिद्ध हैं यथा - चमरकट, चमरपन, चमरघोंच इत्यादि।

7. ओरल हिस्ट्री कैसेट एन 1 में किदारथ राम का सस्करण।

8 वही न0 1 में ध्वन्याकित हरिजनों के घर में गाया जाने वाला यह भजन दृष्टव्य है। इसमें करुणा का वर्गीय आधार भी स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

9. निर्धिनराम द्वारा हस्तलिखित रामायण, सीताराम पुस्तकालय जनईडीह से प्राप्त। इस दुर्लभ को सुलभ कराने के लिए मैं सीताराम पुस्तकालय के सचिव श्री राम जी तिवारी का आभारी हूँ।

- उपाश्रयी अध्ययन वाल्यूम 1 से 6 तक में प्राप्त अध्ययनों से।

10. अछूत वर्गों में प्रयुक्त एव लोकप्रिय मुहावरों का स्वरुप देखने से इस स्थापना की पुष्टि होती है। यथा- "अपने उधमें चिड़ियाँ बाउर, के कुटी सरकार के चाउर" तथा अन्य (ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 फ्रेज एण्ड इडियम में ध्वन्याकित)।

11. उपाश्रयी अध्ययनों से यह बात धीरे धीरे सामने आ रही है किन्तु इस पर अभी बहुत कुछ करना शेष है।

12. ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 वर्डस एण्ड इमेजेज इन सबॉल्टर्न।

13. उसी में ध्वन्याकित निम्न रचनात्मकता का एक पद देखें-

"कौन नदी जल बिना, कौन बृक्ष बिन पात।

कौन सुग्गा पर बिना, कौन मरत बिन काल।।

सरवर नदी जल बिना, कदम वृक्ष बिन पात।

हसा सुग्गा पर बिना, नींद मरत बिन काल।।

14. निर्धिन राम द्वारा हस्तलिखित रामायण मुझे भोजपुर जिले के जनईडीह ग्राम के

सीताराम पुस्तकालय से प्राप्त हुई। इसकी स्थापना 1911 ई0 में इसी ग्राम के कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री शिवलखन तिवारी ने किया था। इस पाडुलिपि को मुझे इसके सचिव श्री रामजी तिवारी ने सुलभ कराया।

15. इस ग्रन्थ का जो थोड़ा बहुत पाठ हो पाया है इसके लिए मैं दीनानाथ राम ग्राम जनईडीह का आभारी हूँ।

16. यह चमड़ा नुमा एक गत्तेदार पदार्थ है जिसे वहाँ के लोग जीन कहते हैं।

17. सस्कृतिकरण की प्रक्रिया के लिखे देखें, एम0 एन0 श्री निवास "सोशल चेन्ज इन मार्डन इडिया (कैलिफोर्निया 1966) तथा मैकिम मैरियट (सम्पादित) विलेज इण्डिया" स्टडीज लिटिल कम्यूनिटी (शिकागो 1955)

18 धनजय कीर- डॉ0 अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन 1955

(कैलिफ.) इलिनर जेलियट - "द लीडरशिप ऑफ बाबा साहेब अम्बेडकर" बी0 एन0 पाण्डेय द्वारा सम्पादित- लीडर शिप इन साउथ एशिया। दिल्ली, 1977 में सकलित।

19. इ0 एम0 एस0 नम्बूदिरीपाद- नेशनल क्वेश्चन इन केरला, 1952 (बाम्बे)।

20. आर0 एल0 हर्डग्रेव- द नाडार्स आफ तमिलनाडु (कैलिफोर्निया 1969)

21. सुमीत सरकार, माडर्न इण्डिया (1985-1947) मैकमिलन इण्डिया 1983

22. इलिनर जेलियट "लर्निंग द यूज ऑफ पालिटिकल मिन्स - द महार्स आफ महाराष्ट्र।

रजनी कोठारी द्वारा सम्पादित कास्ट इन इडियन पालिटिक्स में सकलित।

23 वी0 कोहन का जौनपुर पर अध्ययन, मैकिम मैरियट द्वारा सम्पादित वीलेज इन इण्डिया में सकलित तथा उनकी स्वय की पुस्तक एन एन्थ्रोपोलॉजिस्ट एमॉग हिस्टोरियन्स एण्ड अदर एसेज (ओ0 यू0 पी0 1987) में संकलित अनेक लेख।

24. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 एन।

25. वही।

26. निर्धिन राम के रामायण में कई सदर्भ उनकी अपनी अछूत स्थिति की मुक्ति से जुड़ते

है।

(क) कोई ना हमरा से छुआला, सगरो अन्धारे बुझाला

(ख) जात छूत के भँवर से मोहे उबारो राम।

(निर्धिन राम का रामयण पृष्ठ 37)

27 मालिक का खेत, अग्रेज का प्रेत

चेत, चेत, चेत, चेत ने मना चेत

(निर्धिन राम का रामायण पृष्ठ 40)

28 ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 1 में किदारथ राम का सस्मरण।

29. वे बार-बार अपने टोले के लोगों को सुनाया करते थे-

"काग्रेस की सभा में हमकों चमार नही कहता।

सदर्भ- वही।

30. निर्धिन राम का रामायण पृ0- 52

31. उन्ही के गाँव के काग्रेसी श्री सूर्यनाथ तिवारी से वार्ता पर आधारित (ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 1)

32 झूठ और इतिहास (कैसेट न0 1 में सकलित)

33. निर्धिन राम का रामायण पृष्ठ 63।

छठा अध्याय :

पुनर्रचना का काल (1920-1947)

लोक चेतना की क्रियात्मक क्षमता का पुनर्निर्माण

और कवि कैलाश का सन्दर्भ

1920-1947 तक का इतिहास प्रथम दृष्टि में ऊर्ध्वाकार दिखायी पड़ता है। इसके शीर्ष पर महात्मागांधी जैसे नेता दिखायी पड़ते हैं और नीचे आम जनता की तुड़ी-मुडी, कटी-फटी तस्वीर। इतिहास के आधुनिक शोध कर्ताओं के मध्य इस आत्मालोचना पर सहमति है कि हमने अभी तक राष्ट्रवादी जनान्दोलनों के उफान के रचना शास्त्र का सूक्ष्मतर अध्ययन करने में महत्वपूर्ण सफलता नही पायी है। इन आन्दोलनों की लोकप्रिय चेतना के निर्माण की प्रक्रिया, गतिक्रमबद्धता (मोबेलाइजेशन) की पद्धति, इनकी लोकधार्मिता के अध्ययन के लिए हमारे पारम्पारिक इतिहास लेखन के पास स्रोत सामग्री ही क्या है ? राष्ट्रीय आन्दोलन के इस महत्वपूर्ण दौर में गाधीवादी राष्ट्रवाद (अभिजन राष्ट्रवाद)[1] और लोक राष्ट्रवाद, जिसे वर्गीय शब्दावलि में किसान राष्ट्रवाद[2] का भी सम्बोधन दिया गया है, में क्या और किस प्रकार का अन्त सम्बध था ? इनके मध्य आलोचनात्मक अन्तः सवाद का क्या स्वरुप था ? ये दोनों के मध्य विरुद्धों का सामजस्य कैसे और कहाँ-कहाँ स्थापित हो रहा था ? इनके मध्य संवाद की प्रक्रिया में क्या क्या विखडित हो रहा था ? और क्या क्या निर्मित हो रहा था ? यह सभी प्रश्न हमारे ऐतिहासिक बौद्धिकता (Historical intellectualiti) के समक्ष चुनौती की तरह खड़े हैं। इस अध्याय में हमने राष्ट्रवादी आन्दोलन के ढांचे का सूक्ष्मतर अध्ययन करते हुए इस काल खण्ड में लोक नेतृत्व के स्वरुप एवं संभावना पर विचार कर जन राष्ट्रवाद के इतिहास के निर्माण की दिशा में कुछ कदम बढ़ाने का प्रयत्न किया है। आधुनिक इतिहास लेखन में किसान नेतृतव पर हुए अध्ययन हमारे शोध के इस सत्य को स्थापित करने में सहायता करते है।[3] यह अध्ययन शोध की भाषा में कहें तो मूलत प्राथमिक स्रोतों पर

आधारित है। ये प्राथमिक स्रोत लिखित एव मौखिक दोनों हैं। लिखित एव मौखिक दोनो प्रकार के स्रोतों के लिए स्थापित अकादमिक पुस्तकालयों एव अभिलेखागारों से दूर भोजपुर के अचलों में क्षेत्र अध्ययन ही हमारे समक्ष शोध का एक मात्र उपादान रहा है। लोक चेतना पर शोध करने में यह हमारी मजबूरी भी थी और आवश्यकता भी। यह अध्याय पूर्व के दो अध्यायों लोक चेतना की रचना, विरचना के नैरन्तर्य में ही विकसित हुआ है। पुनर्रचना की प्रक्रिया अपने मूल रुप में विरचना के गर्भ से ही पैदा होती है।

इस अध्याय में हमने इस विशिष्टि कालखण्ड में लोकचेतना की प्रक्रिया, अभिजात शक्ति से त्यामोह के बाद लोक क्षमता एव लोकशक्ति मे उभरी आत्म निर्भरता, लोक क्षमता का अभिजात प्रतीकों एव प्रभुत्वशाली वर्गों से द्वैधात्मक सम्बन्धों के स्वरुप का अध्ययन करने का प्रयास किया है। इसमें गांधीवादी राष्ट्रवाद से लोकराष्ट्रवाद के सम्बन्ध का अध्ययन करने के क्रम में हमने लोकनेतृत्व के उभार, उसकी चारित्रिकता एव तत्कालीन दौर में उसकी विशिष्टता का अध्ययन करने का एक विनम्र प्रयास किया है।

इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति को पुनर्रचना के रुप में स्थापित किया गया है। इसी पुनर्रचना एव पुनर्निर्माण की अभिव्यक्ति इस कालखण्ड में लोकचेतना की महात्मागांधी पर से निर्भरता कम कर अपने आन्दोलन के नये रुपों एवं नये नेतृत्व की खोज में देखी जा सकती है। यह अनायास ही नही था कि 1920 ई0 के बाद जनान्दोलन एव लोक आन्दोलन का युग प्रारम्भ होता है। इसी युग में लोक चेतना अपने जनान्दोलन एवं लोक आन्दोलन के नये रुपों एवं नये नेतृत्व का निर्माण करती हुई दिखायी पड़ती है। इस दौर में गाधी लोक को एक राजनीतिक उपादान के रुप में इस्तेमाल तो करते ही है, लोक भी गाधी को राजनीतिक उपादान के रुप में प्रयोग करती हैं।

यह अध्याय कवि कैलाश पर केन्द्रित है।

कवि कैलाश का जन्म शाहाबाद जिले के अन्तर्गत 'छोड़ा देई'[4] ग्राम में हुआ था। यहा की लोकचेतना 'घोड़ा देई' को घोड़ादेई से जोड़ती है। इस क्षेत्र में प्रसिद्ध लोक वार्ताओं के अनुसार 'जीरा देई' में राजेन्द्र प्रसाद पैदा हुए थे, छोड़ा देई में 'कवि कैलाश'[5]। लोक चेतना उनके जन्म स्थान को स्थानीय इतिहास की महान परम्परा में स्थापित करते हुए उसका सम्बन्ध बाबू कुवर सिंह से जोड़ती है। जिन्होंने छोड़ा देई गाव के पास ही बीबीगज में अग्रेजों को परास्त किया था।[6] इस प्रकार लोक चेतना अस स्थान की महत्ता स्थापित कर कवि कैलाश के भुला दिये गये सघर्षों की स्वीकृति के लिए प्रत्यनशील प्रतीत होती है। कवि कैलाश के पिता और माता का नाम अत्यन्त प्रयत्न के बाद भी प्राप्त नही हो सका। उनकी जन्म तिथि के बारे में उनके जीवनी लेखक यमुना प्रसाद उपाध्याय का कहना है कि "कवि जी की जन्मतिथि निश्चित रुप से निर्णीत नही की जा सकती। इसका मूलकारण यह है कि उनकी जन्म कुण्डली नही बनी थी। और उनसे अधिक वृद्ध कोई ऐसा व्यक्ति भी नही है जो इसकी जानकारी करा सके। बहुत खोज पड़ताल के बाद इतना ही पता चल रहा है कि उनका जन्म 1889 ई0 में हुआ था।[7] लेखक जो स्वय एक स्वतत्रता सेनानी है अपनी टूटी-फूटी भाषा में 1956 में लिखित इस जीवनी में लिखता है कि जिस 1889 में जवाहर लाल जैसे पुरुष रत्न पैदा हुए है उसी 1889 में कवि कैलाश भी पैदा हुए[8] यह तथ्य एक ओर तो 'सयोग' का सूचक है दूसरी ओर 1956 ई0 तक कवि कैलाश के सघर्ष को स्वीकृति न मिलने के कारण लोक के लिए अभिजन बिम्ब के प्रयोग की विवशता या दूसरे दृष्टिकोण से कहें तो अपनी स्वीकृति के लिए अभिजन बिम्बों के जागरुक और गैर जागरुक उपयोग की प्रतिभा की तरफ इशारा करता है।

कवि कैलाश स्वयं अपनी शिक्षा के बारे में एक व्यगात्मक एवं विनोदपूर्ण तुकबन्दी में स्पष्ट करते हैं-

पहाड़ा पढ़ ली आठ, पीठ प बाजल काठ, जाके धइली लाठ।[9]

इस तुकबदी के आशय की व्याख्या अगर की जाये तो यह स्पष्ट होता है कि कवि ने पीठ पर मार से भाग कर पढ़ाई छोड़ दी एव लाठ पकड़ने का, अर्थात कुए से पानी भरकर खेत पटाने का काम करने लगे। इस प्रकार क्या औपनिवेशिक सरचना में तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से छात्रों को दूर करने में पीठ पर काठ की मार भी एक 'उप सघटना' थी। इस सम्बध में बिना कुछ अतिरिक्त जोड़े हम उनके जीवनी लेखक की एक टिप्पणी यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं जो अत्यत दारुण एव ऐतिहासिक विश्लेषण के नये मार्ग खोलने वाली है- "यदि शिक्षा का अर्थ लिया जाय तो कवि जी को कोई शिक्षा नही मिली थी। उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा भी पूर्णतः प्राप्त नही थी। जीवन के आरम्भ में वे एक प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने गये थे, परन्तु वहा से शीघ्र ही विदा हो गये। शायद इसका मुख्य कारण छात्रों के प्रति तत्कालीन शिक्षकों का अमानुषिक व्यवहार था। यद्यपि ये शिक्षक भारतीय थे, परन्तु अपने स्वामी अग्रेजों की गहरी छाप इन पर पड़ गयी थी। ये भी अपने शासन के समान बन्दूक की नोक से अपने छात्रों पर शासन करते थे। उनकी शिक्षा के साधन प्रेम, वात्सल्य, स्नेह तथा उपदेश नहीं थे बल्कि मांस उधेड़ लेने वाली सैकड़ों बेंते, मुगली हाथ-पैर बाधकर तथा छप्पर में टागकर नीचे से बेतों की मार ये सभी उनकी शिक्षा के साधन थे।[10] इसके बाद लेखक लिखता है "कवि जी जैसा भावुक और करूण हृदय का छात्र ये यातनाएं नही सहन कर सका ओर शीघ्र ही उस कसाईखाने से विदा ली।[11] कवि जी द्वारा अपनी शिक्षा के सम्बध में रचित तुकबदी एव उनके जीवनी लेखक की उस पर आधारित व्याख्या में साम्य है किन्तु उस समय के समस्त शिक्षा वर्ग के व्यवहार के प्रति इस तथ्य एवं सिद्धान्त को सामान्यीकृत नही किया जा सकता। 1913ई0 के आस-पास लगभग 25 वर्ष की उम्र में कवि कैलाश ब्रिटिश सरकार की सेना में एक सैनिक के रुप में शामिल हुए।[12] उन्हें घर में नाकारा समझा जाता था। उनकी भाभी जगदेव सिंह की बहू एक राक्षसी थी। उन्हें मारती थी, बिना नमक के रोटी खाने को देती थी, उसी से तंग आकर कवि जी सेना में नौकरी करने गए।[13] इस प्रकार उनका सैनिक बनना 'घर की परिस्थितियों से तग होकर एक अदद नौकरी के रुप में देखा जाना चाहिए।' यह सर्वविदित है कि औपनिवेशिक मनोवृत्ति

आम अपढ़ भारतीयों को युद्ध में झोंकने के लिए सेना में भर्ती करने का बल पूर्वक एव सुनियोजित अभियान चलाती थी।

थोड़े ही दिन में भारतीय सैनिकों के प्रति अंग्रेज अफसरों के व्यवहार से तंग आकर एव दमनतत्र की सच्चाई समझ कर वे सेना से भाग आए। अपने सैन्य जीवन के परित्याग के बारे में वे सदैव कहते थे कि हम एक अग्रेज से कहनी कवि कैलाश के देब S गारी त उ पटक- पटक के मारी S। अर्थात मैनें एक अग्रेज से कहा कि कवि कैलाश को गाली दोगे तो वह तुम्हें पटक-पटक कर मारेगा।[14]

स्थानीय और समानान्तर नेतृत्व का प्रमेय

आधुनिक शोधों से यह तथ्य लगभग स्थापित हो चला है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रीय नेतृत्व के समानान्तर स्थानीय नेतृत्व का विकास हुआ था।[15] कुछ सन्दर्भों में यह नेतृत्व राष्ट्रीय नेतृत्व के स्थानीय अनुकरण से उत्पन्न हुआ था और कई सन्दर्भों में यह मूलतः स्वतः स्फूर्त, राष्ट्रीय नेतृत्व के बिना किसी सीधे सम्पर्क के पैदा हुआ था। हलाकि दोनों सन्दर्भों में एक में अनुकरण होते हुए भी, स्थानीयता के सम्मिश्रण के कारण इसमें नये रग थे। दूसरे में, स्वतः स्फूर्त होते हुए भी राष्ट्रीय नेतृत्व की छवियों का कही न कही मौलिक रुपान्तरण जुड़ा हुआ था।

समस्त सन्दर्भ में कही न कही राष्ट्रीय छवियों का प्रभाव था। यह प्रभाव कही-कही 'उसी दिशा में', कहीं नवीन दिशा का निर्माण करता हुआ प्रतीत होता है। स्थानीय आन्दोलनों एवं नेतृत्व की विविधता एवं व्यापकता पर अभी बहुत थोड़ा ही अध्ययन हो पाया है। अतः इस सन्दर्भ में किसी सामान्य निष्कर्ष पर तो नही पहुचा जा सकता है किन्तु प्रो0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के उपाश्रयी अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष हमें बल प्रदान करते हैं।

इन अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि देहाती क्षेत्रों में मोटे तौर पर चल रही दो तरह की सघर्ष की लहर दिखायी पड़ रही थी : एक जो ऊपर से नीचे की ओर फैल रहा था और स्वीकार्य गांधीवादी रुपों और नियत्रणों के जरिये किसानो को लामबद कर रहा था और दूसरा जो अपेक्षाकृत स्वायत्त 'किसान राष्ट्रवाद'था। वह ग्रामीण समाज की गहराइयों से निकलकर बाहर आ रहा था और गाधी के नाम का उपयोग तो कर रहा था, लेकिन उनके सदेश की व्याख्या काफी विविधता पूर्ण रुप से सामाजिक दृष्टि से कम निषेधक रुपों में कर रहा था।[16] इसी दूसरी धारा 'किसान राष्ट्रवाद' के गर्भ से स्थानीय नेतृत्व का उद्‌भव हुआ था। यह स्थानीय नेतृत्व कब लोक नेतृत्व में परिवर्तित हो जाता है, इसकी बौद्धिक व्याख्या अत्यत कठिन है।

कवि कैलाश और लोक नेतृत्व

स्थानीय नेतृत्व और लोकनेतृत्व के मध्य की रेखा अत्यत पतली एव अदृश्य है। कब स्थानीय नेतृत्व लोक नेतृत्व में परिवर्तित हो जाता है, कब लोक नेतृत्व स्थानीय नेतृत्व में परिवर्तित हो जाता है, इसका निर्धारण अत्यत दुष्कर कार्य है। किन्तु मोटे तौर पर कहें तो स्थानीय नेतृत्व अपनी स्थानीयता, अपने लोक से लोकप्रिय माध्यमों एव लोकप्रिय रुपों को अपने नेतृत्व में विलयित कर अत्यत लोकप्रिय नेतृत्व का निर्माण करता है जिसे 'लोक नेतृत्व' कहा जा सकता है। स्थानीय नेतृत्व एक भौगोलिक राजनीतिक शब्दावली के सदृश्य है। लोकनेतृत्व एक सांस्कृतिक राजनीति अवधारणा को रूपायित करता है। यो कहें कि लोक नेतृत्व, नेतृत्व की सास्कृतिक गतिकी की सज्ञा है जो स्थानीय होने के साथ-साथ अपने राष्ट्रीय वलय के निर्माण की दिशा में प्रवृत्ति होती है।

साक्षात्कारों से कवि कैलाश का जो स्वरुप उभर कर आया है उसके अनुसार वे धोती, अधकटी बडी पहनते थे तथा कंधे पर गमछा रखते थे।[17] वे गांधी जी की तरह

उघारे नंगे बदन नहीं रहते थे, बल्कि भारतीय किसान के गृहस्थ रूप में रहते थे।[18]
प्रायः गमछे का मुरेठा बांधते थे। हाथ में गांधी जी की तरह छड़ी नहीं बल्कि डंडा रखते थे

वे कांग्रेस के सदस्य बाद में हुए पर राष्ट्रीय आन्दोलन से पहले ही जुड़ गये।
जालिया वाला बाग की दुर्दान्त औपनिवेशिक घटना से अत्यंत दुखी एवं व्याकुल थे, उ
समय गांधी की ललकार पर वे असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गये।[19] यहां पर लेख
द्वारा सहज एवं सामान्य घटना के रुप में वर्णित इन पंक्तियों का अगर मूलयांकन कि
जाय तो यह स्पष्ट होता है कि कवि जी जनान्दोलन के मार्ग से होकर कांग्रेस में आ
उन्होनें कांग्रेस की औपचारिक सदस्यता 1926 ई0 में ग्रहण की।[20]

असहयोग आन्दोलन की परिधि में उन्हें समाहित करने वाली दो परिस्थिति
"जलियां वाला बाग" जैसी हृदय विदारक घटना की जनश्रुतियां[21], गांधी की ललकार
जलियांवाला बाग की घटना से उत्पन्न मनोवैज्ञानिक वातावरण की भूमिका प्राथमिक
इससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि औपनिवेशिक दमन, दबाव एवं औपनिवेि
वातावरण ने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में प्राथमिक उत्तेजक तत्व की भूमिका प्रदान की
राष्ट्रीय नेतृत्व ने उस प्रतिरोध की चेतना को दिशा देकर वृहत्तर राष्ट्रीय संघर्ष खड़ा क
का प्रयास किया।

कवि कैलाश ने 1921 के आन्दोलन में अपने राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ स
स्फूर्त ढंग से अपने गांव से ही किया। वे दस-पन्द्रह नवयुवकों का दल लेकर गांव
सड़क से गुजरने वाली बैलगाड़ी, तांगा गाडी का निरीक्षण करते यदि उनमें कोई वि
वस्तु होती तो उन्हें रोक लेते। उसे ले जाने वाले को अनेक तर्कों से समझाते।
समझाने के क्रम में वे अनेक लोकरुपकों एवं लोक तर्कों का प्रयोग करते।

इसी क्रम में वे एक अत्यंत रोचक लोकरूपक उपयोग करते हुए कहते हैं "तहार मेहरारु से उ सोना के सब गहना ले जाता, आ ओकरा बदला में भेजता पीतल के छूछी, आ तू ओकरा के धधा-धधा के ले जा ताड़।"[22]

इस प्रकार कविजी ने असहयोग आन्दोलन के उपदेश् के प्रसार के लिये कृषक जनता के सीधे-सीधे समझ में आने वाले लोक रुपकों को अपनाया। कृषक जीवन से सीधे जुड़े हुए प्रतीकों का ही उन्होंने चयन किया। इसके पश्चात कवि जी अपने गांव से ही युवकों का दल लेकर पिकेटिंग करने आरा शहर आये।[23] अत्यन्त तन्मयता से वे इस आन्दोलन से जुडे थे। तभी चौरी-चोरा की घटना के पश्चात् महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। इससे अनेक भारतीयों की तरह कवि कैलाश को भी अत्यंत निराशा हुई और वे गांव की ओर लौट पड़े।

वहाँ जाकर उन्होंने एक "कैलाश-नर्सरी" की स्थापना की। जिसे लोग "कैलाश आश्रम" भी कहा करते थे। वे प्रायः अपने सहयोगियो से कहा करते थे- "का साबर मती देने मुँह देख ताड़ S। गांव-गांव में साबरमती बनाव S।[24] कवि जी की यह उलाहना एक ओर तो असहयोग आन्दोलन में गांधी जी की भूमिका से उत्पन्न हुई जान पड़ती है। दूसरे, यह पंक्ति लोक चेतना की अपनी शक्ति के एहसास की भी सूचक है, जो वस्तुतः असहयोग आन्दोलन में गांधी की भूमिका से लोकमन में उत्पन्न व्यामोह की उत्पत्ति है।

कैलाश नर्सरी

"हे पौधे हर किस्म के, मेवा फल और फूल

छोड़ा देई बाग में, गई नर्सरी खुल।"

ये पंक्तियाँ कवि कैलाश द्वारा प्रकाशित एक पर्चे से ली गयी है, जिसे कवि जी ने कैलाश नर्सरी के प्रचारार्थ छपवाया था।[25]

कवि जी ने घोड़ा देई में कैलाश-नर्सरी की स्थापना की। यह एक बागवानी थी, जिसमें विभिन्न प्रकार के फल और फूल के पौधे लगे थे। इसके पौधों को बेचकर जो आय होती थी, उससे कवि जी अपना और आश्रम का खर्च चलाते थे।[26]

आश्रम के खर्चों में मूलरूप से वहाँ पर सदैव आश्रय लिये रहने वाले स्थानीय फरारी काट रहे स्वतंत्रता सेनानियों के भोजन वगैरह पर आने वाले खर्च थे।[27] इस प्रकार 'कैलाश नर्सरी' का उपयोग फरारी काट रहे स्वाधीनता सेनानियों के आश्रय के लिए भी किया जाता था। भारतीय राष्ट्रवाद की अभिजात शब्दावली में कहें तो इसका स्वरुप बहुत कुछ 'आश्रम की तरह' था। किन्तु कवि कैलाश ने कभी इसे आश्रम का सम्बोधन नहीं दिया। वे ज्यादा उपयोगितावादी और कृषक जीवन के सामान्य परम्परा के शब्द 'बागवानी' का प्रयोग करते रहे। जवाहर प्रसाद बताते हैं कि स्थानीय जमींदार सत्य नारायण सिंह ने कई बार 'कैलाश नर्सरी' को स्थानीय राष्ट्रवाद का केन्द्र बनते देख आर्थिक सहायता का प्रस्ताव किया पर कवि कैलाश ने स्वीकार नहीं किया।[28] उन्होंने पौधे बेचकर स्थानीय राष्ट्रवादी आन्दोलन में आने वाले खर्चों को पूरा करने का प्रयास किया। यहाँ गांधी का 'आश्रम' और कवि कैलाश की 'बागवानी' के प्रतीकों के चरित्र को स्पष्ट रुप से समझा जा सकता है।

'कैलाश नर्सरी' के प्रचारार्थ कवि कैलाश ने जो पर्चा प्रकाशित करवाया था, जिसका कुछ अंश उनके जीवनी लेखक यमुना प्रसाद उपाध्याय जी ने भी उद्धृत किया है, उसकी एक तुड़ी मुड़ी पुरानी प्रति उनके सहकर्मी जवाहर प्रसाद ने हमें उपलब्ध कराया, में प्रकाशित आम्र वृक्षों के नामों की सूची अत्यत रोचक है एवं वह हमें ऐतिहासिक सर्वेक्षण के लिए प्रेरित करती है।

आम के नाम

लंगडा, बंबई, शुकुल, सिपिया, केरवा, राढ़ी, नेउरा, मधुकुपिया, दयाल सिंह, मोहन ठाकुर, कतिका, जाफर कृष्ण भोग, बेला, फाजली, नरसिंह भोग, गुलाब खास, बेलाखास, कैलाश खास, कैलाश भोग, कैलास पसन्द, महाराज पसन्द, लड्डुआ, मिठुआ, केरवा महबूब, तम्बुआ, सिरिदहन, मालदा, दरभंगा, मालदहा, छपरा, मालदहा भैरवां, मालदह दुधिया, मालदह सब्जा, मालदह सफेद, मालदह कलकत्ता, बम्बई नम्बर वन, बम्बई नम्बर टू, बम्बई मूतिकला, कृष्णभोग और्डिनरी, त्रिफला, दोफल, जेठू, बथुआ, फरकवादी, बडआमा इत्यादि।

आम के पौधों के नामकरण का मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र का विश्लेषण हमें आवश्यक जान पड़ता है। इनमें कुछ आमों के नाम पारम्परिक हैं यथा- लंगड़ा, शुकुल, सिपिया, मधुकुपिया। कुछ नाम स्थानों से जुडे हैं यथा- नेउरा (पटना के पास का एक कस्बा है), मालदहा दरभंगा, मालदह छपरा, मालदह कलकत्ता, बम्बई नम्बर वन, बम्बई नम्बर टू। सम्भव है आम के इन विशिष्ट नस्लों को इन स्थानों से सम्बद्ध होने के कारण इनका नामकरण किया गया हो। कुछ नाम लोक मिथकों से जुड़े हैं यथा- नरसिंह भोग, कृष्ण भोग, महाराज पसन्द। कुछ आमों के नाम कविजी में अपने नाम से सम्बद्ध कर रखा था- कैलाश खास, कैलाश भोग, कैलाश पसन्द, इससे स्पष्ट होता है कि कवि जी ने आमों के मौलिक नामकरण की प्रवृत्ति भी सक्रिय थी। जिससे वे स्वयं नये नामों का सृजन करते थे और उन्हें सामान्य आम से एक प्रतीक के रुप में रुपान्तरित कर देते थे।

परन्तु नामों की इस सूची में हमें चौकाने वाले तीन नाम दिखायी पड़े। गांधी भोग, मोहन सिंह और दयाल ठाकुर। इसी चौकाहट ने हमारे क्षेत्र अध्ययन एवं स्थानीय इतिहास के लिये नये प्रश्न खड़े किये। इन तीन नामों के प्रतीकों का आशय क्या है ? इसके लिये

हमने लोक स्मृतियों का सहारा लिया। वृद्ध लोक पुरुषों से साक्षात्कार से यह स्पष्ट हुआ कि हमारी परम्परा में आमों के सम्बंध में ये तीन नाम पहले से प्रचलित नहीं थे। अर्थात ये कवि जी की मौलिक रचना है। इनमें गांधी भोग का आशय तो स्पष्ट है इसका सम्बंध महात्मा गांधी के नाम से है। किन्तु मोहन सिंह और दयाल ठाकुर कौन थे ? इस सम्बंध में हमने जब शाहाबाद जिला स्वाधीनता संग्राम के ऐतिहासिक दस्तावेज देखना प्रारम्भ किया तो पता चला कि मोहन सिंह और दयाल ठाकुर 1921 के संग्राम में औपनिवेशिक पुलिस की मार से शहीद हो जाने वाले युवक थे।[29] स्मरण रहे कवि जी ने बागवानी 1921 के आन्दोलन की असफलता के बाद गांव लौटकर बनायी थी। इन शहीदों का प्रतीकीकरण कर कवि जी किन ऐतिहासिक उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते थे ? सम्भव है वे इनका प्रतीकीकरण कर अपनी स्मृतियों के क्रान्तिकारीकरण की प्रक्रिया में अचेतन रुप से सक्रिय रहना चाहते हों। बहुत संभव है वे इन्हें जन जन के बीच 'बीज वृक्ष'के रुप में फैला कर उनकी चेतना में इनकी स्मृतियाँ रोपना चाहते हों। इन्हें मात्र एक यादगार के रुप में लेना हमारे लिये एक इतिहासकार की जिम्मेदारी से जी चुराना होगा।

कवि जी के जीवनी लेखक श्री यमुना प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं " वे 1921 के आदोलन की असफलता के बाद गांव लौटकर चुपचाप बैठ नहीं गए, बल्कि लोगों के बीच आन्दोलन का संदेश पहुंचाते रहे।[30]

कैलाश नर्सरी और साबरमती आश्रम के प्रतीकों के भेद एवं उनकी क्रियात्मकता के अन्तर से दो प्रकार की राजनीति की भिन्नता को समझा जा सकता है। इससे लोक की राजनीति की तकनीकों को समझने के भी द्वार खुलते हैं।

लोक की समानान्तर राजनीति

लोक की समानान्तर राजनीति का स्वरुप अत्यंत जटिल है। एक विशिष्ट प्रकार की स्पष्टता की तह में अनेक विशिष्ट अस्पष्टताएँ सक्रिय हैं। किन्तु यह अस्पष्टता हमारे बौद्धिक ज्ञान की सीमा है न कि लोक के राजनीति के स्वरुप की।

कवि कैलाश 1921 के आन्दोलन के बाद विभिन्न रुपों में स्थानीय राष्ट्रवादी संघर्ष में सक्रिय नेतृत्व की भूमिका प्रदान करते रहे। 1924-26 के बाद भारतीय राष्ट्रवाद के 'खादी-चरखा' के परिघटना के सम्बंध में मौखिक कार की स्पष्टता की तह में अनेक विशिष्ट पहनते थे किन्तु चर्खा और खादी आश्रम की राजनीति से सदैव दूर रहते थे।[31] इसके बदले में वे संघर्ष एवं सक्रियता के नये-नये रुपों की खोज एवं प्रयोग करते रहते थे। इसका एक उदाहरण कैलाश नर्सरी ही था। 1930 के राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर में वे पुनः गांजा, भांग, शराब इत्यादि दुकानों पर पिकेटिंग, धरना[32] साढ़े 6 फीट के बूढ़े जवान का तिरंगा झडा लेकर आगे बढ़ना, औपनिवेशिक यातनाएं झेलना, छः मास का कारावास भोगना इत्यादि रुपों में सक्रिय थे।[33] इस आन्दोलन में उनकी भूमिका सामान्य भूमिका नहीं थी बल्कि समष्टि से उभरे हुए व्यष्टि की भूमिका और व्यष्टि के समष्टिकरण की भूमिका थी।

इतिहास की इसी सक्रियता के मध्य उनके भीतर समानान्तर राजनीति की चेतना का विकास होता रहा। यह 'समानान्तर' बहुत कुछ अभिजन से लोक के मोहभंग और विरुद्धों के टकराव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। इस 'समानान्तर' की चेतना को समझने के लिए हमारे पास उनकी कुछ तुक्कडियां हैं जिन्हें वे अपनी सभाओं में, लोगों से बातचीत के मध्य, अपील (आह्वान) के रूप में उपयोग किया करते थे। मौखिक तुक्कड़ियों को समय में अवस्थित करना तो अत्यन्त कठिन है किन्तु इन्हें प्रवृत्तियों के मध्य अवस्थित किया जा सकता है।

इस समानान्तर की चेतना की प्रवृत्ति को समझने में कवि जी की यह लोकोक्ति हमारी सहायता करती है यथा-

1. जे खाला घीव मलीदा, ओकर कान बहिराइल बा।

डंटा उठावा चल फिरंगियन के भगावे के दिन आईलबा।।

2. कहे कवि कैलाश, उठाव डंडा

तबहिं फूटी अंग्रेजवन के भंडा।।

ये व्यंगात्मक मारक क्षमता से भरपूर तथा आह्वान के रुप में प्रयुक्त तुक्कड़ियाँ अहिंसा को बहुत लम्बा खीचने के विरुद्ध हैं तथा अहिंसा और अन्य अभिजन राष्ट्रवादी स्त्रात्जी से असहमत हैं। तत्कालीन राष्ट्रवाद की लोक स्त्रात्जी के रुप में कवि कैलाश काव्यात्मक एवं प्रतीकात्मक ढंग से 'नोचल S गोरवन के बाल''उठाव डंडा' इत्यादि लोक के लिए प्रतिरोध के सहज रास्ते की तरफ इशारा करते हैं।

यही प्रवृत्ति अपने विकासमान रुप में गांधी की स्थापित संस्कृति के समक्ष समानान्तर राजनीतिक सांस्कृतिक प्रतिदर्श उपस्थित करती है। जिसमें स्थापित संस्कृति से भिन्नता एवं स्वाभाविक सुधारीकरण का अंश है। उदाहरणार्थ कवि कैलाश की कुछ कवितायें देखें-

1. पहीनी खादी। टोपी, ओपी का पेन्हब

माथा प मुरेठा बांधी।

2. ये बाबा गांधी, कब ले मिली आजादी।

अतना दिन हो गईल, पहिरत खादी।।

निश्चित रुप से ये सारी तुक्कड़ियाँ 1921 के बाद रचित एवं प्रयुक्त हुई होंगी। इनमें खादी का कुरता तो पहनें परन्तु मुरेठा बाधने का भी सुझाव दिया गया है। यह मुरेठा भारतीय कृषक की प्रतीक है। खादी उन दिनों निरक्षर जनता के समक्ष आजादी का माध्यम

एवं प्रतीक दोनों हो गया था। कवि जी अत्यन्त दारुण ढंग से इसमें गांधी का सम्बोधन कर इस प्रतीकात्मकता के खोखलेपन की ओर संकेत करते हैं।

1931 से लेकर 1935 के चुनाव तक वे पांच बार जेल गये।[34] 1933-34 ई0 में आकर इस 'समानान्तर' ने स्पष्ट राजनीतिक स्वरुप ग्रहण कर लिया और कवि कैलाश शहाबाद जिला कमेटी के सदस्यों के चुनाव में मुफस्सिल थाने से कांग्रेस के विरोधी गुट के उम्मीदवार के रुप में चुनाव में खड़े हो गये।[35] वे कांग्रेस के अधिकृत प्रत्याशी जिले के प्रतिष्ठित काग्रेसी पंडित रामनरेश त्रिपाठी के विरोध में खड़े थे। यह विरोध व्यक्तिगत तथा महत्वाकांक्षाओं का न था क्योंकि वे दोनों साथ-साथ अपने और अपनी पार्टी के बारे में प्रचार करते थे। एक मंच पर पण्डित जी अपनी और अपनी पार्टी का प्रचार करते थे, तत्पश्चात कवि कैलाश अपने और अपने विचारधारा के लोगों के बारे में उसी मंच से प्रचार किया करते थे। अपने बारे में यह प्रचार क्या था ? प्रचार था " पं0 रामनरेश त्रिपाठी इस इलाके के सर्वश्रेष्ठ कांग्रेसी उम्मीदवार हैं। उनकी सेवाएं महान हैं। वे मुझसे अधिक योग्य व्यक्ति हैं। अतः आप लोग उन्हीं को डिस्ट्रिक बोर्ड का मेम्बर चुने। परन्तु मैं उनका विरोध करता हू क्योंकि मैं "इन लोगों" के काम करने के ढंग से सहमत नहीं हूँ।[36]

1935 में जब कांग्रेस महा समिति ने एसेम्बली का चुनाव लड़नातय किया। कवि कैलाश ने तब लोक नेतृत्व का प्रतीक बनकर शहाबाद जिले में कांग्रेसी उम्मीदवारों का समर्थन एवं चुनाव प्रचार किया। वे अपने साथ 15-20 किसानों की टोली रखते, लोक गीत गाते, झंडा लहराते, जनभाषा एवं जन प्रतीको में लोगों को समझाते-बुझाते, शाम तक वे किसी बड़े गांव में पहुच जाते और वहीं गांव के खलिहान में डेरा डाल देते। 'कवि जी आये हैं' "कवि जी आये हैं" पूरे गांव के लोग इकट्ठा हो जाते। बच्चे बूढे जवान सबको उनसे कविता सुनने की लालसा रहती। कवि जी पहले कुछ लोकगीत सुनाते, फिर पंचायत पर सर्वसम्मति से कांग्रेसी उम्मीदवार को वोट देने का फैसला किया जाता। इस अवसर पर

वे प्रायः दो लोकगीत अवश्य सुनाते थे-

चुन के भेजो आज कौंसिल में।

बहादुर, वीर, योद्धा, चुनके भेजो आज कौंसिल में।

जो रखे लाज भारत की, वही अब जाय कौंसिल में।

बधी है मा विदेशी की कठिन दुर्भेद्य कड़ियों से

जो काटे जाये ये कड़िया, वही हैं योग्य कौंसिल के।

है मरते भूख से बच्चे, करोड़ों नारियां बूढ़े

खिलावे जाय जो इनको, वही अब जाय कौंसिल में।

है रहती अर्द्ध नगी नित, करोड़ों मातु वो बहने

जो ढंके लाज इनकी, वही है योग्य कौंसिल के।

किसनऊ

भारत में पहले पहिल आईल चुनाव बाटे

खूब सोच बूझ वोट दीह हो किसनऊ।

कही जमीदार पार्टी, कही महाराज पार्टी,

वोट खातिर भइलं तैयार हो किसनऊ।

तू हूँ आपन दुख देख, ओकेरो उपाय सोच,

कइसे दुख दूर तोर होई हो किसनऊ।

यही जमीदार, महाराज लोग के यादकर,

काई-काई कइलन व्यवहार हो किसनऊ।

कभी दस्तूरी ले ले, कबहीं इजाफा ले ले

कभी गला चिपी धन लेसु हों किसनऊ।[37]

इन दोनों कविताओं के विश्लेषण से लोकमन के अनेक अवधारणात्मक तत्व स्पष्ट

हांते है। प्रथम लोकगीत में कवि कहते हैं, 1935 में कौसिल में उसी को भेजे-

1. जो राखे लाज भारत की।

2. बधी हैं माँ विदेशी की कठिन दुर्भेद्य कड़ियों में, जो काटे जाये ये कड़ियाँ

3 है मरते भूख से बच्चे, करोड़ों, नारियाँ बूढ़े

खिलावे जायें जो इनके।

4 है रहती अर्द्धनगी नित करोड़ों मातु वो बच्चे,

जो ढके लाज इनकी, वही हैं योग्य कौंसिल के।

कवि कैलाश में मन में 1935 ई0 में राष्ट्रवाद के प्रतिनिधिक प्रतीक में उपरोक्त योग्यताएं होनी चाहिए। इससे स्पष्ट है कि 1936 तक आते आते लोकमन का राष्ट्रवाद भावुकता, रोमान, छवियां, अफवाह से ऊपर उठकर तुलनात्मक रुप से ज्यादा यथार्थ, करोड़ों की भूख, रोटी, करोड़ों के कपड़े से जुड़ चुका था।[38] हलाँकि भारत मा की लाज रखने तथा बेड़ियो को काटने जैसे लोकप्रिय आह्वान इसमें सम्मलित रहे जो कि भारतीय राष्ट्रवाद के अन्तः तत्व थे।

दूसरी लोक कविता की व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि 1935 में कवि कैलाश का राष्ट्रवाद जमीदार विरोधी, अवतारवाद के प्रति आलोचनात्मक तथा पूर्णतः किसान चेतना से युक्त दिखायी पड़ता है। इन तीनों प्रवृत्तियों को तत्कालीन 'कृषक राष्ट्रवाद' के रुप में देखा जाना चाहिए। जहां तक जमीदार विरोध का प्रश्न है, यह पूरी लोक कविता जमीदार विरोधी तथा कृषक हितों की सजग चेतना से युक्त है। अवतार वाद, दैववाद, भाग्यवाद के प्रति कवि कैलाश की दारुण आलोचनात्मकता देखिये-

"सुनिला अनाथन के, दीनानाथ साथ देले

तोरा साथ काहे नही, देसु हो किसनऊ।"[39]

यह आलोचनात्मकता एक कृषक चेतना के सतत अनुभव से पैदा हुई है। इसीलिए इनका स्वरुप तत्कालीन बौद्धिकों की योजनाबद्ध आलोचनात्मकता से भिन्न है।[40] इन लोकगीतों को कांग्रेस प्रचार का अस्त्र बनाते हुए कवि कैलाश के समर्थन-विरोध का सम्पूर्ण तर्क जमींदार विरोध और उपनिवेश वाद विरोध से जुड़ा हुआ है।

इस समानान्तर राजनीति की एक और विशिष्टता उल्लेखनीय है। कविजी जिस गांव में 'सभा' लगाते थे, वहीं रात में लिट्टी बनाकर खाते थे। उनके लिट्टी के लिए आटा चमार से लेकर ब्राह्मण हरेक घर से थोड़ा-थोड़ा ही मांगकर आता था। वे कभी भी एकघर या दो घर के आटे की लिट्टी नहीं खाते थे।[41] यह प्रतीकात्मक कृत्य दो तथ्यों को स्पष्ट करता है। एक तो वे उक्त गांव के अभिजन को कोई भी अतिरिक्त महत्व नहीं देना चाहते थे। दूसरे, इसके माध्यम से सबको अपने में, अपने को सबमें रुपायित करना चाहते थे। जातिवाद की सीमाएं उसके प्रसार को रोक नहीं पाती थी।

प्रभाव की भाषा और भाषा का प्रभाव

कवि कैलाश की लोकप्रियता

कवि कैलाश अपने क्षेत्र मे अत्यंत लोकप्रिय थे। उनकी लोकप्रियता के सम्बंध में पीरो प्रखण्ड के कार्यकर्ता राम जियावन पाण्डेय का शाहाबाद जिला कमेटी के मंत्री को लिखा पत्र यहां उद्धृत करने योग्य है "मंत्री जी।" कवि कैलाश के रिस के कम करहीं पड़ी। उनका के नराज करके राजेन्दर बाबू के सभा इहाँ हमनी के ठीक से नइखी जा कर सकत। एने सभा शुरु हुई, ओने सभा के दोसरा देने खंझड़ी लेके गीत गावे लगी हैं।"[42]

(मंत्री जी। कवि कैलाश के गुस्से को कम करना ही पड़ेगा। उनको नाराज करके राजेन्द्र बाबू की सभा हम लोग नही कर सकते। इधर सभा प्रारम्भ होगी- उधर वे खंझड़ी

लेकर गीत गाने लगेगे।)

उनकी लोकप्रियता के सम्बंध में उनके जीवनी लेखक यमुना प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं - "दिन-रात, गांव गांव घूमकर आप कांग्रेसी उम्मीदवारों का प्रचार करते थे और मैं तो कहूंगा आपके इन लोकगीतों का प्रभाव इन अशिक्षित ग्रामीणों पर जैसा पड़ा, वैसा महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के तथा पं0 जवाहर लाल नेहरु के सारगर्भित तथा गंभीर भाषणों का नहीं जान पड़ता था।[43]

कवि कैलाश की लोकप्रियता के विकास में उनकी लोक छवि महत्वपूर्ण थी। वे सदैव कंधे पर गमछा और माथे पर मुरेठा बांधते। किसानों की आवश्यकता एवं साहस का प्रतीक डडा लेकर चलते।[44] भाषण देते समय भी डडा भांज-भाज कर बातें करते।[45] जन-सम्पर्क के समय उनका गांवों में रात बिताना, वही लिट्टी लगाकर खाना, सामूहिकता को बढावा देना, इत्यादि लोक प्रतीकों के प्रयोग ने भी उनकी लोकप्रियता की वृद्धि में सहायता की होगी।

कवि जी ने अपने संघर्ष में गांधीवादी प्रतीकों का उपयोग भी किया किन्तु उन्होंने इसे पुनर्निमित एवं पुनर्रचित किया। यथा- खादी पहनना, माथे पर टोपी नहीं, मुरेठा बांधना। साबर मती आश्रम का प्रतीक उनके लोकपर्यावरण में आकर कैलाश नर्सरी के रुप में परिवर्तित हो गया।

कवि कैलाश ने संघर्ष के कई लोक तकनीकों का भी विकास किया। उन्होंने आन्दोलन के कई रोचक एवं आकर्षक लोक रुपों का विकास किया। उन्होंने "रेल गाड़ी को बैलगाड़ी"[46] बनाओ का अभियान चलाया। उनके निर्देश पर क्रांतिकारी तिरंगा लेकर रेलगाड़ी की इंजन पर चढ जाते, जहां कहीं पब्लिक को चढ़ना उतरना हो, वे तिरंगा लहरा

देती तो क्रान्तिकारी रेलगाड़ी रुकवा देते। तिरंगा देखते ही रेलगाड़ी रोक देना आम बात हो गयी थी।[47] इसके द्वारा वे एक ओर ब्रितानी उपनिवेशवाद को अनुपयोगी सिद्ध करते, दूसरी ओर अपनी प्रासंगिकता स्पष्ट करते थे।

1942 के आन्दोलन में उनके निर्देश पर कोर्ट कचेहरी में जाकर लड़के जज-कलक्टर बनकर आफिस चलाते।[48]

सडकों पर पेड़ काट कर डाल दिये जाते जिससे अंग्रेजी फौज उनसे न आ जा सके। कैलाश नर्सरी में क्रान्तिकारियों का कई दल बैठा होता। उनमें से जो दल वहां बना लिट्टी खाता, वही उस दिन सबसे क्रान्तिकारी और हिम्मती कार्य करने का उत्तरदायित्व उठाता। जीवनी लेखक यमुना प्रसाद उपाध्याय लिखते है कि एक रात मुझे भी उस आश्रम से धमार के पास पुल तोडने वाले दल में कार्य करने का सौभाग्य मिला था।[49] उनके नेतृत्व में पोस्ट आफिस तथा रेलवे के लाखों लाख टिकट या तो फाड़ दिये जाते या आम पब्लिक को बॉट दिये जाते।[50]

कवि कैलाश ने एक अत्यन्त सशक्त प्रभाव की भाषा का विकास किया था। इसके लिए लोक भाषा मे तुक्कड़ियों एवं लोकगीतों का व्यापक रुप से "जन लामबंदी" (जन संगठन) के लिए उपयोग किया। या यूं कहें उनके पास संघर्ष के लिये सबसे महत्वपूर्ण अस्त्र के रुप में वे तुक्कड़ियां तथा लोकगीत ही थे। वे अपनी राय, अपना दर्शन, अपना सिद्धान्त तुक्कडियों में ही व्यक्त करते थे। उनकी तुकबन्दियों के लोकप्रिय होने का कारण यह भी है कि लोकमन को तुकबंदियां अत्यन्त प्रिय एवं स्मृतियों में बैठ जाने योग्य होती है। इसका कारण यह है कि एक तो यह अत्यन्त सरल होती है, दूसरे-उनमें कठिन बिम्ब नहीं होते। उन्होंने जन भाषा में अपनी राजनीति का प्रचार किया। उन्होंने लोक मुहावरे का अत्यन्त चतुराई से प्रयोग किया। एक बार वे युवकों की सभा में भाषण दे रहे थे। उन्होंने

कहा कि आप लोग देश के सिपाही हैं। सिपाही माने सिर+पाही, सिर माने दिमाग, पाही माने - काम, अर्थात जिसका दिमाग देश के काम में लगा रहे।[51] इसी सिपाही शब्द की व्याख्या उन्होंने अपने को पकडने आये भारतीय सिपाहियों के एक दल के मध्य इस प्रकार किया - सिपाही- सिर+पाही माने जिसका दिमाग देश के काम मे लगा रहे और आप लोग देश भक्तों को पकड़ रहे हैं, लाठियां चला रहे है।[52] इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त सशक्त तर्कशास्त्र एवं तीव्र प्रभाव माध्यम का विकास कर लिया था।

उन्होंने निरक्षर ग्रामीण जन को समझाने के लिए गँवई और देहाती तथा लोकमन के निकट के प्रतीकों का प्रयोग किया। वे प्रायः जन सभाओं में भाषण देते हुए एक लोकप्रतीक का उपयोग करते थे- " इ बुढवा, हमनी के घर के घीव पी के, खूब मोटा गईलबा। ठीके बा, लेकिन जे खूब घीव पीले रहेला, ओकरा हड्डी पट-पट कर बरसातों में जरेला। एह से अबकी भादों में एकराके फूंक दिआई।"[53] यहां वे बुढवा का सम्बोधन अंग्रेजी सरकार के लिए किया करते थे। इस सम्बंध में वे एक और लोक प्रतीक व लोक मुहावरे का भी प्रयोग किया करने थे। वे कहा करते थे, हांथी जइसन विसाल जानवर के सूँड़ में चुंटी घुस जाने पर मर जाती है तो हम लोग तो छः फुट के आदमी हैं। इस लोक प्रतीक का निहितार्थ है कि हम लोग इस अंग्रेजी उपनिवेशवाद के मृत्यु के कारण बनेंगे। इसके द्वारा वे निरक्षर जनता के समक्ष कार्यकारण के सम्बंध में प्राप्त परिणम की भी व्याख्या करने में सफल होते थे।

अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध उनकी स्त्रात्जिक समझ कितनी परिपक्व थी, इसका उदाहरण द्रष्टव्य है वे एक लोक कथा गढते थे कि एगो राकस रहे, ओकर जान बसत रहे ओकरे टेट में, ओम्हीं इ गोरवन के जान, एहनी के धन में बसेला, एह से पहिले सरकारी धन बर्बाद कईल जाए।[55] अर्थात एक राक्षस था। जिसका जान उसके टेट (कमर में धोती का सिरा जिसमें रुपया बांधा जाता था) में बसता था, उसी तरह इन अंग्रेजों का प्राण इनके

धन में बसता है। इसीलिए पहले इसी को बर्बाद किया जाए।

वे निरक्षर लोक को हिम्मत बंधाने के लिए एक मुहावरा रचते थे-

"पेड उपर से ओतना मोटा देखात बा

बाकि भीतर से खोंखर बा S।-[56]

अर्थात पेड़ ऊपर से उतना मोटा दिखता है, पर भीतर से खोंखला है। इसका निहितार्थ यह प्रस्तावित किया जा सकता है कि औपनिवेशिक भयावहता से डरो मत। वह अपने अन्तर में शक्तिहीन एवं खोखला है। इसे एक धक्का मारिए। इस प्रकार इन मुहावरों से वे उपनिवेशवाद विरोधी एक प्रकार का आह्वान भी किया करते थे।

इस प्रकार वे अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतीक के रूप में घी पीता बुढ़ा, हाथी, राक्षस,'मोटा पेड़' जैसे लोक समाज के अत्यंत निकट के प्रतीक उठाते थे। उन्होंने धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग न के बराबर किया। जबकि कपिल कुमार के अध्ययन किसान विद्रोह, कांग्रेस और अंग्रेजी राज्य (अवध 1886-1922) से स्पष्ट होता है कि उसी समय खण्ड में अवध में किसानों के मध्य उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष को तीव्र करने के लिए बाबा रामचन्द्र धार्मिक प्रतीकों का मुख्य रूप से प्रयोग कर रहे थे। बाबा रामचन्द्र प्रांय

"राज समाज विराजत रूरे। रामचन्द्र, सहदेव झिगुरे।

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता

बिनु हरि कृपा मिलई नहीं सन्ता।"

जैसे धार्मिक प्रतीकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित कर रहे थे।[56] सम्भवतः ऐसा कवि कैलाश के मूल रूप से कृषक होने से संभव हुआ हो। वे खेती किसानी से जुड़े थे, अतः उस जीवन से सीधे जुड़े बिम्ब उनकी अन्तः चेतना में रहे हों। कृषक जीवन की वाणी का व्यापक भाग जीवनोपयोगी एवं धर्म निरपेक्ष है। घाघ और भड्डरी की कहावतें जो सम्पूर्ण कृषक जीवन में छाये हुए हैं, में कहीं भी धार्मिक बिम्बो का प्रयोग नही है। लोक

मुहावरों का व्यापक अंश धर्मनिरपेक्ष तथ्यों एवं बिम्बों से रचा गया है। संभवत: कवि कैलाश की चेतना में कृषक जीवन की वाणी का प्रभाव अधिक हो फिर कवि कैलाश महान परम्परा से न जुडे होकर लोक की लघु परम्परा व द्वितीय परम्परा से जुड़े थे जहां 'राम' एवं स्थापित धार्मिक बिम्ब के प्रति एक कटाव भी दिखायी पडता है। फिर उन्होंने जिस प्रकार अंग्रेजी साम्राज्यवाद के इतने जटिल चरित्र को इन सहज प्रतीको के माध्यम से इतना खोलकर और स्पष्ट ढंग से आम जनता को समझा दिया, शायद धार्मिक बिम्बों में यह कार्य उन्हें कठिन लगा हो। किसी 'गंवई' के लिए रस्सी हांथी इत्यादि अत्यंत मूर्त बिम्ब है। कवि कैलाश प्रतीकों के प्रयोग में 'अमूर्तता' से भी बचते दिखाई पड़ते हैं। दैवीय अमूर्तता से उन्होंने चेतन और अवचेतन ढंग से बचने का प्रयास किया है। वास्तव में उनके प्रतीक भारतीय लोक की धर्म निरपेक्षता के निकट है। यहां धर्म निरपेक्षता शब्द का प्रयोग हमारी मजबूरी है क्योंकि इस प्रवृत्ति के लिए वर्तमान में हम सबके पास कोई और शब्द नही है।

उन्होंने सदैव जनोपयोगी प्रतीकों का प्रयोग किया। उनकी एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है-

"लाट ना हवन स, ह्वन स लाठा।
एहनी के फूंक के पकावल जाई भाठा
आउर ओहि से नवा घर बनावल जाई।"[58]

यहां उन्होंने कितने सहज ढंग से लाट साहबों को जिनका सूर्य डूबता ही नहीं था, को लकडी का लाठ बना दिया और लोक को समझाया कि इनको जलाकर ईट का भट्ठा बनाया जायेगा तथा पकी हुई ईंटों से नया घर बनाया जायेगा। इस सम्पूर्ण लोक रुपक में एक तार्किक अन्विति भी है जो लाट के पतन से नये घर के निर्माण तक जुडा हुआ है। इस प्रकार उनकी भाषा का प्रभाव लोकमन से विशाल अग्रेजी सामाज्य का भय दूर कर देता था। वहां क्या भय जहां लाट, लाठा बन जाये, जहां पता हो कि राक्षस का जान उसके

'मनी बैग' में बसता है। जहां उसकी भयावहता अधिक से अधिक उस बुढ़े आदमी की भयावहता है जिसने घी पी रखा है। या उस हाथी की तरह जिसे मारने के लिए चीटी ही काफी है।

इस प्रकार कवि कैलाश को लोकमनोविज्ञान की गहरी पकड़ थी।

लोक माध्यम की अपनी भाषा, अपनी शब्दावलि होती है, जो हमारे नागर बोध से भिन्न होती है। कवि कैलाश प्राय. अंग्रेजो को 'गोरा' कहा करते थे। गोरा 'शब्द' अपढ़, निरक्षर, अत्यंत दूरस्थ प्रदेशो में रहने वाले भारतीयों के समक्ष ज्यादा शीघ्र मूर्तमान हो जाने वाला शब्द है। अंग्रेज शब्द थोडा अमूर्त है।

इस प्रकार कवि कैलाश की लोक प्रियता में जिस प्रभाव की भाषा का उन्होंने उपयोग किया उसके प्रभाव ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

फुट नोटस्

1. अभिजन राष्ट्रवाद की प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए सबॉल्टर्न इतिहासकारों के शोधकार्य ही मुख्य उपादान हैं।

2. संयुक्त प्रान्त में सविनय अवज्ञा सम्बंधी डा0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के शोध प्रबंध में ग्रामीण राष्ट्रवाद के इस रुप पर जोर दिया गया है।

3. द एसेन्डेन्सी ऑफ कांग्रेस इन यू0 पी0 (ओ0 यू0 पी0) ज्ञानेन्द्र पाण्डेय तथा कपिल कुमार का 'द पिजेन्ट इन रिवोल्ट' (मनोहर)।

4 अमर शहीद कवि कैलाश - ले0 यमुना प्रसाद उपाध्याय, संसार प्रेस, गोपाली कुंआं, आरा, पृष्ठ-3

5. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-1 के ध्वन्यांकित संकलन से।

6 वही

7 अमर शहीद कवि कैलाश - ले0 यमुना प्रसाद उपाध्याय, संसार प्रेस, गोपाली कुंआं, आरा, पृष्ठ-4

8 वही कुंआ, आरा, पृष्ठ-4

9. 'अमर शहीद कवि कैलाश' पुस्तक में यमुना प्रसाद उपाध्याय द्वारा उद्धृत।

10 वही

11. वही

12 वही

13. कवि कैलाश के मित्र स्वतंत्रता सेनानी तथा वर्तमान में कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बद्ध जवाहर प्रसाद के साक्षात्कार से कैसेट नं0 K-1 में ध्वन्यांकित।

14. वही 15. द एसेन्डेन्सी ऑफ कांग्रेस इन यू0 पी0, ए स्टडी आफ इम्प्रफेक्ट मॉबिलाइजेरान (ओ0 यू0 पी0), प्रो0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय सबाल्टर्न स्टडीज - समस्त खण्ड (ओ0 यू0 पी0) सम्पादक रणजीत गुहा एवं कपिल कुमार का अध्ययन 'किसान विद्रोह, कांग्रेस और अंग्रेजी राज्य (मनोहर)।

16 संयुक्त प्रान्त में सविनय अवज्ञा सम्बंधी डा0 पाण्डेय के शोध प्रबंध में 'ग्रामीण राष्ट्रवाद' के इस दोहरे पक्ष पर बल दिया गया है।

17. ओरल हिस्ट्री,कैसेट नं0 K-1।

18 वही

19 अमर शहीद कवि कैलाश - ले0 यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 28।

20 ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-2 में जिले के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता रामनरेश त्रिपाठी का साक्षात्कार जिन्होंने उन्हें कांग्रेस की सदस्यता दी थी।

21. श्री कमला (जनवरी, 1918 में प्रकाशित पाठक के एक पत्र से स्पष्ट होता है कि उन दिनों जलियांवाला बाग की घटना के सम्बंध में मुंह से मुंह बातें फैल रही थी। कोई कह

रहा था, पूरे पंजाब को अंग्रेजों ने काट डाला। पंजाब के सारे कुंओ में भारतीयों की लाशें भरी पडी हैं, इत्यादि।

22. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-2 में जवाहर प्रसाद का संस्मरण।

23. अमर शहीद कवि कैलाश - यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 21

24. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-2 में जवाहर प्रसाद का संस्मरण।

25. अमर शहीद कवि कैलाश - यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 30

26 वही

27. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-2 में कवि जी के मित्र जवाहर प्रसाद का संस्मरण।

28. वही 29 भोजपुर के अमर शहीद, कांग्रेस कार्यालय, शहीद भवन का अप्रकाशित दस्तावेज।

30. अमर शहीद कवि कैलाश - यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 32

31. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-2 पर आधारित।

32. अमर शहीद कवि कैलाश - यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 35

33 वही

34. वही

35 श्री कमला दैनिक अंक 7 में प्रकाशित।

36 अमर शहीद कवि कैलाश - यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 34

37. वही

38. कई भोजपुरी लोकगीतों में ऐसा ही भाव मिलता है पर उनका रचना काल तय करना कठिन है। किन्तु उनके प्रतीक एवं भाषा इसी काल में निर्मित प्रतीत होते हैं।

39 यही स्वर सांस्कृतिक सन्दर्भ में शिवनारायणी गीत 'हमनी के बेरिया निठुर भइले बनवारी' में दिखायी पड़ता है जो 1935 तक आते आते लोक जगत में राजनीतिक सन्दर्भ ग्रहण करता प्रतीत होता है।'

ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 5 में संकलित।

शिव नारायण भजन। संकलन व्यक्तिगत।

40 इस सैद्धान्तिक ढांचा के निर्माण् में तात्विक सहायता के लिए ग्राम्शी की कृति 'प्रिजन नोट बुक' का ऋणी हूँ।

41. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-1 से।

42 शहीद भवन भोजपुर स्वाधीनता संग्राम कार्यालय में कांग्रेस कार्यकर्ता श्री निझावन पाण्डेय का जिलामंत्री शहाबाद को 3-2-1924 को लिखा पत्र।

43 अमर शहीद कवि कैलाश ले0 यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ- 35

44. वही

45 ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-1 से।

46 अमर शहीद कवि कैलाश ले0 यमुना प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ- 35

47 ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-1 से।

48 वही

49. वही

50. वही

51. वही

52. वही

52. वही

54 वही

55 वही

56 वही

57. कपिल कुमार, किसान विद्रोह, काग्रेस और अंग्रेजी राज्य (मनोहर)

58. ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 K-1 से।

निष्कर्ष

इस शोध कार्य में मैंने मुख्य रुप से लोकमन में राष्ट्रवाद के निर्माण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया है। इसमें हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का अध्ययन कर हिन्दी क्षेत्र में तत्कालीन विकसित हो रहे 'नव मध्य वर्ग' की चेतना को भी देखने का प्रयास किया गया है। ताकि इसके माध्यम से नागर चेतना के कुछ तंतुओं को भी समझा जा सके तथा नव मध्य वर्ग की चेतना के समानान्तर तथा उससे पृथक लोक चेतना में उभर रहे राष्ट्रवाद के अन्तर को समझा जा सके।

भारत में राष्ट्रवाद का इतिहास रचने के लिए आधुनिक भारत के शोधकर्ताओं ने अनेक प्रयास किए हैं। यह उसी श्रृंखला में एक लघु कड़ी है, जिसमें भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास की व्यापकता एवं गहराई की प्राप्ति के लिए अनेक तकनीकों का प्रयोग किया गया है। इसमें अन्त अनुशासनिक प्रवाह का उपयोग करते हुए भारतीय राष्ट्रवाद का इथनोग्राफी विकसित करने का प्रयास किया गया है। इसका आधार भारतीय राष्ट्रवाद के रुप की बहुलता एवं उसके बहुबचन पर आधारित है। इसमें लोक संस्कृति में नीहित राष्ट्रवाद (1857-1947) का अध्ययन कर भारतीय राष्ट्रवाद की अनन्त ध्वनियों में से कुछ को सुनने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः लोक संस्कृति अपने निर्माण के दौर में निर्मित करने वाली शक्तियों की रचनात्मक प्रतिक्रिया होती है। अत इस संरचना का अध्ययन कर जन प्रतिक्रियाओं को भी राष्ट्रवाद का इतिहास रचने में उपयोग किया गया है।

इसमें मैने राष्ट्रवाद के इतिहास के पुनर्निर्माण में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक उपादानों से भिन्न सांस्कृतिक उपादानों का प्रयोग करने का प्रयास भी किया है।

इसके प्रथम अध्याय में 'राष्ट्रवाद के प्रमेय को समझने का प्रयास करते हुए मैंने यह समझा है कि अभी तक भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास अपूर्ण है। राष्ट्रीय संचेतना के अनेक तह अभी छुपे हुए हैं। इन तहों को उद्घाटित किये बिना हम भारत में राष्ट्रवाद के इतिहास की अनंतता को नहीं समझ सकते।

द्वितीय अध्याय में 19वी और 20वीं शताब्दी में उद्भूत हुए हिन्दी बौद्धिक वर्ग की चेतना को समझने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास की प्रक्रिया में मैंने समझा है कि हिन्दी बौद्धिक वर्ग की राष्ट्रवादी चेतना में अनेक अन्तर्विरोध है। यह अन्तर्विरोध उनके भूत एवं उनके वर्तमान के अन्तर्विरोधी संवाद की प्रक्रिया से उभरे हैं। इसके लिए इन बौद्धिकों की चेतना के निर्माण की नागर पद्धति भी जिम्मेदार है। इनका तत्कालीन विकासमान नव मध्यवर्गीय स्वरुप, जो पाश्चात्य प्रभाव के द्वन्द्व में उभरा भी था इन अन्तर्विरोधों का जनक कारक था। इन द्वन्द्वों, अन्तर्विरोधों तथा उहा-पोहों को हम उनके राष्ट्र की अवधारणा, हिन्दू-मुस्लिम सम्बंधों पर उनके दृष्टिकोण में पा सकते हैं। विभिन्न कालों में समय के परिवर्तन के साथ इनकी अवधारणाओं में परिवर्तन को भी हमनें रेखांकित किया है।

तृतीय अध्याय इतिहास लेखन और लोक संस्कृति" में मैने यह समझा है कि इन छुपे हुए अनेक तहों के उद्घाटन के लिए हमें इतिहास लेखन की प्राविधि का विकास करना होगा। इतिहास लेखन की प्राविधि का यह विकास लोक संस्कृति, लोक साहित्य के अजस्त्र श्रोत सामग्रियों के सार्थक उपयोग की दिशा में ही करना श्रेयस्कर होगा। इतिहास लेखन के लोक श्रोतों का उपयोग किए बिना हम भारतीय राष्ट्रवाद के लोक स्वरुप का अध्ययन करने में सफल नहीं होंगे। इस अध्ययन में मैने इतिहास लेखन में लोकसंस्कृति के श्रोतों, उसकी अन्तःध्वनियों की आवश्यकता को महसूस करते हुए लोक संस्कृति में छुपे इतिहास का अध्ययन करने के लिए एक प्राविधि विकसित करने का प्रयास भी किया है। इस प्राविधि (तकनीक) की मूल चिन्ता लोक मानसिकता में प्रवेश की रही है। इस सन्दर्भ

में फ्रांसीसी इतिहासकार इवेजिन वेबर 'लोकमन' में प्रवेश करने के लिए लोकगीतों, नाटकों, कहावतों, मुहावरों लोक कथाओं के अध्ययन को आवश्यक मानते रहे हैं।[1]

बाद के तीन अध्याय तीन लोक कवियों एवं लोक नायकों, सुखदेव भगत, निर्धिन राम तथा कवि कैलाश पर केन्द्रित है। इनके माध्यम से मैंने (1857-1900), (1900-1920), (1920-1947) तक की लोक संस्कृति में राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का क्रमिक प्रयास किया है। कवि कैलाश जो 1942 ई0 में शहीद हो गये यहां की स्थानीय चेतना में इनके शहादत की गूंज बाद के वर्षों में भी गूंजती रही।

1857 - 1900 ई0 के काल खण्ड में लोक संचेतना एवं लोक क्षमता की रचना की प्रक्रिया दिखायी पड़ती है। यह रचना नयी औपनिवेशिक स्थितियों एवं अनुभवों का सामना करने के लिए लोक चेतना का स्वयं के निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ था। इसी काल खण्ड के लोक इतिहास में नागर पुनर्जागरण या यों कहें मध्य वर्गीय पुनर्जागरण से भिन्न लोक पुनर्जागरण का स्वरुप भी दिखायी पडता है। जो प्राक् औपनिवेशिक काल से ही चले आ रहे लोक संज्ञान के नैरन्तर्य एवं परिवर्तन से जुड़ा हुआ था। निश्चित रुप से लोक जागरुकता मात्र ब्रितानी उपनिवेशवाद एवं पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में ही विकसित नहीं हुई थी, बल्कि उसमें लोक की चेतना की स्वतः स्फूर्तता एक प्रमुख कारक थी। इसी अध्याय में मैनें लोक में भी निम्न वर्गीय चेतना की अवस्थिति को रेखांकित किया है।

1900-1920 का काल खण्ड जो इस शोध अध्ययन में निर्धिनराम पर आधारित है, में मैनें राष्ट्रवाद के इस उभार के दौर में एक संवेदनशील अछूत के राष्ट्रवाद का अध्ययन करने का प्रयास किया है। इस प्रयास के क्रम में मैंने समझा है कि सम्पूर्ण राष्ट्रवादी संघर्ष से जुडे होने के पश्चात भी उस समय भोजपुरी प्रदेश के इस सवेदनशील अछूत का राष्ट्रवाद अपने मूल में तत्कालीन समाज में अपनी अछूत स्थिति से मुक्ति से जुड़ा हुआ

था। इस क्रम में यह भी देखने को मिला है कि तत्कालीन भारतीय आभिजात्य नेतृत्व संवर्ग ने अछूतों को अपने को अभिव्यक्त करने के लिये उपयुक्त तथा प्रतिष्ठापूर्ण स्थान नहीं दिया।

1920-47 तक का काल खण्ड, कवि कैलाश के लोक नायकत्व पर केन्द्रित है। इसमें मुख्य रुप से कवि कैलाश के लोक नायकत्व के विकास की प्रकिया का अध्ययन किया गया है। स्थानीय नेतृत्व तथा राष्ट्रीय नेतृत्व के संपर्कों के ढांचे का भी इसमें अवलोकन किया गया है। कई आधुनिक शोधों से भी यह तथ्य पुष्ट होता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रीय नेतृत्व के समानान्तर स्थानीय नेतृत्व का विकास हुआ था। कुछ सन्दर्भों में यह नेतृत्व राष्ट्रीय नेतृत्व के स्थानीय अनुकरण से उत्पन्न हुआ था और कुछ संदर्भों में यह मूलतः स्वत. स्फूर्त राष्ट्रीय नेतृत्व के बिना किसी सीधे सम्बंध के उत्पन्न हुआ था। हलांकि दोनों संदर्भों में, एक में अनुकरण होते हुए भी स्थानीयता के सम्मिश्रण के इसमें नये रंग थे। दूसरे में स्वत. स्फूर्त होते हुए भी यह राष्ट्रीय नेतृत्व की छवियों का कही न कहीं मौलिक रुपान्तरण से जुडा हुआ था।"[2] इस प्रकार इस शोध अध्ययन में मैने लोक नेतृत्व के ढांचे की स्वतः स्फूर्तता, साथ ही साथ राष्ट्रीय नेतृत्व से उसके संपर्क के स्वरुप को समझने का प्रयास किया है। इसमें मैने लोक नेतृत्व तथा राष्ट्रीय नेतृत्व के संबंधों की द्वन्द्वात्मकता के लक्षण भी पाये हैं।

इस प्रकार यह शोध अध्ययन भोजपुरी क्षेत्र की लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद के स्वरुप को समझने का एक विनम्र प्रयास है।

फुट नोट्स

1. इवेजिन वेबर का नवीन अध्ययन, "पीजेन्टसइन फ्रेंचमैन- द मॉडर्नाइजेशन ऑफ माडर्न फ्रांस (1870-1914) स्टैनफॉर्ड, स्टैनफॉर्ड यूनि0 प्रेस।

2. संयुक्त प्रान्त में सविनय अवज्ञा सम्बंधी डॉ0 ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के शोध प्रबंध में 'ग्रामीण राष्ट्रवाद' के इस दोहरे पक्ष पर बल दिया गया है।

परिशिष्ट : 1

कुँवर सिंह सम्बंधी लोकगीत

(पूरे भोजपुर क्षेत्र में वीर कुँवर सिंह के शौर्य पूर्ण कार्यों के बारे में लोकगीत गाये जाते हैं जिनमे से कुछ को संकलित किया गया है)

(A)

गाँवन-गाँवन में डुग्गी बाजल, बाबू के फिरल दुहाई-

लोहा चबावई के नेवता बा, सब साज आपन दल बादल।

बा जान गवांवई के नेवता, चूड़ी फोरवावई के नेवता।

सिन्दूर पोंछाववई के नेवता, बा राँड़ कहावई के नेवता।

जेई हो हमार ते माथ देई, जेई हो हमार से साथ देई।

बा इहँा न मौका समझई के, बा इहँा न मौका बूझईके,

कीतो फेरौ नेवता हमार, की तो तइयार हो जूझईके।

(B)

चिठ्ठिया जे लिखि-लिखि भेले कुँवर सिंह

सुनहु अमर सिंह भाई हो मोर।

बाबू अमर सिंह बाबू कुँवर सिंह

दुनो जने हवे अपने ही भाई।

चरबी के टोटवा दाँत से कटवाबे ला

छतरी का जात नसावे ला हो भाई।

बात के खातिर बाबू कुँवर सिंह

ले लै फिरंगिया से रार हो भाई।

(C)

देख दानापुर में होवे ला लडइया, सुनसुन मोर भइया हो ना।

कूद-कूद के बाबू कुँवर सिंह, तेगा तेज चलावे ना।

गाजर-मूरी सन काट-काट, दुश्मन के मार भगावै ना।

समर में नि:शंक बंक बाकुरा विराजमान

सिंह के समान सोहे सेना बीच निज दल के।

कमर में कटार सोहे- कारवां से बात करे

उछल-उछल सिर काटे, बाहु शत्रु दल के।

बायें हाथ मोछन पर ताब देत बार-बार

दाहिना शमशेर बाँके विजयी सम चमके।

कहे कवि गंगा जगदीशपुरी कुँवर सिंह

जाको तलवार देखि गोरन भागे दल-दल के।

सिंह बनी सुरमा, सुनान सहजादा जी के।

सिक्ख मन्दरासीन को गुमान गर्व टूट गये।

किन्ही घमसान बाबू कुँवर सिंह मैदान बीच

मारे मरदान सारे लाटन को लूट गये।

खपाखप छुरी चले, छपाछप मूरी कटे

टपकत सोनित के, नदी धार बहल नूँ।

चमके उज्जैना नेता, तीर बन दुधारी नेगा।

सैन वीर कुँवर सिरीमन ललकारन नूँ।

इन्द्र डर भागे गैल, यमराज दौड परल
खप्पर लेई डाकिनी नाचे नाच लागल नूँ।
झूमन कुँवर सिंह वीर बाँका रन बीच जैसे
हाथि कद कँापि सिंह डाँकि फाँकि बइठल नूँ।

देख-देख बाबू के बयजन्ती फहरात बा,
बक्सर के मैदान में तेगा चमचमात बा।
बिगुली फुँकात बा, हर हर के पुकार बा।
देख-देख बाबू के बयजन्ती फहरात बा।
सिर कटे, देह कटे, शत्रु बिलबिलात बा,
बाबू जी के सेना में हरख के पुकार बा।
जय दुर्गा, जय बाबू जी के बोलिया सुनात बा,
बक्सर के मैदान बीच झण्डा अब गरात बा।

- (D)

बाबू कुँवर सिंह तोहरी राज्य बिनू, अब न रँगइबो केसरिया।

इतने अइले घेरि फिरंगिया, उतते कुँवर दुई भाइ हो।

गोला बारूद के वले पिचकारी, बीचवा में होत लड़ाई।

बाबू कुंवर सिंह तोहरो राज्य बिनू,

हम न रँगइबो केसरिया।

बाबू कुंवर सिंह तेगवा बहादुर, कोठवा पर उड़त अबीर- हरे, लाल।

कोठवा पर उडत अबीर।

अहो बाबू, अहो बाबू कुँवर सिंह तेगवा बहादुर

कोठवा पर उडत अबीर।

(E)

अब छोड़ रे फिरंगिया हमार देसवा,

लूट पाट कइले तुहूँ मजवा उड़वले-

जागल लाल अब, जागल बा ललनवा-

अब छोड दे सुदेसवा सुन रे फिरगिया-

कइलस देस पर जुलूस जोर फिरंगिया-

जुल्मुम कहानी सुनि तड़पे कुँवर सिंह।

बन के लुटेरा उतरल फौज फिरंगिया,

सहर गाँव लूटि फूँकि, दिहलस फिरंगिया।

सुन-सुन कुँवर के हिरदय लागल अगिया

नंगी तलवार ले गरजे कुँवर सिंह

सुमर भवानी कुँवर उतरे मैदनवाँ

देखिकेफिरंगियन के काँपे लागल तनवाँ-

गाजर मूरी अस लगले काटे उ कुँवर सिंह।

तोइका देबो इनाम देबो

तोके राजा बनाइब रे।

बाबू कुँवर सिंह भेजेले सनेसवा-

मौसे ना चली चतुराई, रे।

जब तक प्रान रही तन भीतर

मारनन नाहीं बदलाई रे।

बाबू कुँवर सिंह पश्चिम से जब चलले।

पटना में डेरा गिरवले ना।

लोहा के जामा सिअवले कुँवर सिंह।

लम्मन बंद लगवले ना।

ढाल तरुवरियाँ के कवन ठिकाना-

गोली दरजनवाँ खाये ना।

ओहि दिन सँगवा उनकर केहूना दीहल-

जगदीशपुर ना होईत फिरंगिया राज।

बबुआ, ओहिदिन कुँवर लेले तरुवरिया हो ना।

बबुआ, धनवा धरम आबरू मइया पर ना।

बबुआ विधवा ओ राँडि के पिरतिया पर ना।

बबुआ भाई ओ बहिनिया की, इजतिया पर ना।

बबुआ बाप अबरू दादा के किरितिया पर ना।

बबुआ आइल रहे विपति के धरिया पर ना।

(F)

भर भोजपुर कुंवर बिरजले, रीवा सरनिया नू।

हाट बजरिया कुंवर बिसारे, के कहत सब गुनवा नू।

भोजपुर में डुमराव बसेला, ऊहो बाड़े फिरगिये नू।

सब विसेन मिलि घर में लुकइले, बाबू परेला अकेला नू।

बादल के बीच नव-रवि के प्रताप होला,

वैसे ही प्रताप बा कुँवर सिंह के विजय में।

तोप घहरात, रनडका के तुमुल दोर,

डूब जात रहे देश-भक्तन के 'जय' में।

नाचत रहे कुँवर-हय मुँह फेन फेंक,

याकि मनु-भाव नाचे भीषण प्रलय में।

बार बार दौड़ जायँ कुँवर अरि के बीच,

हवे जइसे कहीं भय नाहीं जीवन अभय में।

मुँह फेर के फिरंगी भाग चलले वित्रस्त,

भोर के किरन जब चलल गगन में।

जप-केतु फहरात, घहरात जयघोष,

अरुन किरन नाचे असि झन-झन में।

सामने पड़त लास, फौज में उमग जोर,

जैसे छिड़ल रन जीवन मरन में।

कह ले कुँवर 'देस भक्तन के जयकार,

एक बार मौत होला मनुज जीवन में।'[1]

--स्वर्गीय हरेन्द्र देव नारायण

'कुँवर सिंह' (भोजपुरी महाकाव्य)

(G)

बड़ा वीर मरदाना था

'मस्ती की थी छिडी रागिनी, आजादी का गाना था,

भारत के कोने-कोने में होता यही ताराना था।

उधर खड़ी थी लक्ष्मी बाई और पेशवा नाना था,

इधर बिहारी वीर बँाकुडा खड़ा हुआ मस्ताना था।

अस्सी वर्षों की हड्डी में जागा जोश पुराना था,

सब कहते हैं कुँवर सिंह भी बड़ा वीर मरदाना था।'

--मनोरंजन प्रसाद सिंह

(H)

'कुँवर व अम्मर जब कम्मर कसे सम्मर में-
मन में दिगम्बर ले मारे लड़वैये को।
केते शतकोटि निज साहब को खेदि खेदि-
पीछे तो मारे उन सारे भगवैये को।
नगी तलवार गहि कहैं वीर अम्मर सिंह-
सारे कलकत्ते को लत्ते फाड़ डालेंगे।
माथ काटि लाट के बेमाथ अगरेज जेते-
लावा में लपेटि लाट छन में उड़ावेंगे।'

--लोकनाथ तिवारी

(1)

मातु गंग ! तोहरा तरंग पर हमार बाँह अरपित बा

- रामेश्वर सिंह काश्यप

गदर संतावन के

महीना रहे सवार के,

सुराज के लडाई में भारत के पहिला सिंह गरजन,

बनल रहे आसमान धरती के दरपन।

नीचे धरती पर रहे गोली सनसनात

घोड़ा भागत हिनहिनात

छूटत चिनगारी रहे टाप के रगड़ से,

खा के महावत के गजबाँक हाथी चिंघारत रहे

तोप के दहाना से दनादन आग बरसे।

मइया से असीस लेके,

तिरिया के पीठ ना देखावे के बचन देके,

जबकि भोजपुरिया जवान,

रख तरहत्थी पर जान, निकल पड़ले घर-घर से।

गदर संतावन के

महीना रहे सावन के।

ऊपर अकासी में सगर घमासान रहें

जइसे टकरात होय भँइसा जम्हराज के

ढाही मार डकरत होय लड़त ऐरावत से

करिया बदरिया के गरजन घुमडत रहे

बिजुरी तरवार अस छन छन चमकत रहे

रकत के फुहार लेखा बरखा झमकत रहे

गोली के बाढ़ लेखा पवन उनचास हनहनात सनकत रहे

परलै के खिरकी खोल मउअत रहे झाँकत

धरती अकास में जे लागल होड़,

ओकरे के आँकत।

बनल रहें आसमान धरती के दरपन

सुराज के लड़ाई में भारत के पहिला सिंह गरजन

गदर संतावन के

महीना रहे सावन के।

(J)

जोना फिरंगनी के राज में

सुरुज रहे चउबिस घंटा चाकरी बजावत,

जौना फिरंगिन के राज में, समुंदर के लहरिया

इसारा पा हुकुम के रहे मुड़ी उठावत गिरावत,

जौना फिरगिन के जाल में, भारत देस

सोना के चिरंई अस वाझल छटपटात रहे,

परदेशी सौदागर के आके कपट चाल में

गँवा के आजादी पछतात रहे,

हाथ मल मल के रहजात रहे, सूझत न राह रहे

सउसे देस दुखसे, विपत से, तबाह रहे,

कि जइसे अचक्के केहू फूंक मार

राख के उड़ा दे अंगारा से

कि जइसे केहू ठोकर मार तूड़ दे चट्टान

राह मिले सदियन से बन्हल रुकल परबत के धारा के

कि जइसे कौनो सूतल बाघ सपना में चिहुँक के दहाड़ उठे

कि जइसे चोट खइला पर गेहुअन साँप,

छत्तर काढ खीसन फुफकार उठे,

कि जइसे मरघट अस सन्नाटा में

बवन्डर झपट्टा मार कूद परे

आन्ही के पाख चढ़ल घूर के पहाड़ उठे

जइसे केहू मूर्दा के टोली में मन्तर पढ़ फूंके जान

कूद के चिता से जइसे कफ्फन फाड़,

मुर्दा पुकार उठे,

ओइसही कुँअर सिंह , बूढ़ अस्सी साल के

ताल ठोंक अइले मैदान में

लाठी तरवार लेके भिड़ गइलन तोप से

केकरा में साहस रहे उनकर राह रोक ले ?

कूद परे जइसे गौरैया झपट बाज पर

दुधमुँहा बाघ जइसे कूदे गजराज पर

एक और फौज अंगरेजी रहे लैस सकल हरबा हथियार से

दोसरा ओर मुट्टी भर सेना कुँअर सिंह के छटल ललकार के

देश के दीवाना कहूँ तोप से डेराइल हS ?

छाता तनता से कहूँ आन्हीं रोकाइल हS ?

फूलन के महक का बगइचा के छंकाइल हS ?

भोजपुरिया के जगला पर, केहु देखा के आँख

साबुत बाँच जाय, भला कतहूँ सुनाइल हS ?

कँपनी के पाया डगमगा गइल,

तखत विकटोरिया के काँपल, ताज

भुँइयाँ ढिमिला गइल

गदर सतावन के

महीना रहे सावन के।

(K)

जब चलल शेर भोजपुरी दल, धरती धमक गइल,

दुश्मन के छाती दरक गइल,

सउसे देश में जइसे बिजुरी चमक गइल,

माटी के कनकन में बीर रस छलक गइल,

आजादी के सनेस लेके "रोटी में कमल के फूल"

मगगे बँटा गइल,

नगर नगर, गाँव गाव, भारत के

किरिया आजादी के खा के चलल।

छूटल जगदीसपुर, राजमहल, राजपाट,

धनवैभव, सुखसुविधा दुनिया के किरिया भइल;

सिंह कहूँ सूतेला मखमल के बिछौना पर रेसम के चद्दर तान ?

गरुढ़ कहूँ लेला बेसरा भला

कंचन के कंगूरा ऊंची अटारी पर ?

बाज कहूँ खोंता बनावेला चमेली के झाडी में ?

घोडा के पीठे पर रात बीत जात रहे,

भाला के नोंके में गोभ-गोभ लिट्टी सेंकात रहे

अंग्रेजी सेना मात पर मात खात रहे,

हाथ मलमल के पछतात रहे,

नाँव सुन कुँअर सिंह के,

फिरंगिन के करेजा में दलक अमात रहे,

मुट्ठी भर कुँअर के जमात जइसे सिव के बरात रहे

दुस्मन के छक्का छोड़ावे में,

नहला पर दहला जमावे में,

ना कबहुँ अघात, नही इचिको अगुतात रहे,

मउअत के साथ अंखमुँदउअल के खेल दिन रात रहे,

अगरेजी सेना के पसेना छूट जात रहे,

कतनो घेर बन्हला पर कुँअर ना घरात रहे,

आँखिन में घूर झोंक, पारा अस छटक छट जात रहे,

सिक्कर में बवंडर बन्हाइल हऽ ?

ताल में चनरमा के परछाहीं

मछरी के जाल में छनाइल हऽ ?

गदर संतावन के

महीना रहे सावन के।

(K)

देश के जगावत,

फिरंगिन के नाकन से चना चबवावत,

वीर रण बाँकुड़ा कुँअर सिंह,

आवत रहन लवटल जगदीशपुर,

मेरठ, अयोध्या, लखनऊ, आजमगढ,

गढ़ पर गढ़ फतह करत,

दुस्मन के छाती पर मूग दरत

बलिया के नियरा, सिवपुर के घाट मिरी

गगा लाँघे के रहे।

आगे रहीम खाँ, कुँअर सिंह के रिसाला के सिपहसालार

निसान सिंह,सेनापति, निवासी सहसरॉव के,

रितुभंजन सिंह बाबू कुँअर सिंह के प्रधानमंत्री,

रणदलन सिंह, खूफियादल के नायक वीर

पार कर गइले घाट नाव पर हुकुम पाके।

कुँवरा सिंह मौका देख,

गंगा में हाथी दिहले उतार पाछे से,

सावन के हहरात, लहरात गंगा में

हाथी उतरात बहल जात रहे,

धारा में हाथी जनुक भारथ के नीर भरल

नैनन में, करिया पुतरिया के लेखा बुझात रहे

ओह पार पहुँचे में घरी भर के बात रहे

गदर संतावन के

महीना रहे सावन के।

दोसरा ओर भेदिया से कसहूँ मँहक लागल

फिरगिन के सेना में शोर मचल,

घोड़ा पर जनरल डगलस आ लुगाई कप्तान दूनो

पाछे पर गइलेसऽ सिकारी, कुकुर लेखा टोह लेत,

बालू पर हाथी के पैरन के निसान,

पहचान रहे धोखा देत।

घाट पर मलाह रहन भीमा आ नैकू,

दूनो गरीब बाकी आन पर मरे बाला,

मउअत से भी नाही इचिको डरे वाला,

मलाहन के हजारन के इनाम जब डिगा ना सकल,

फिरगिन के माया जब भोजपुरी जनता के

बाबू कुँअर सिह के खिलाफ ललचा के बरगला न सकल,

लुगार्ड के तमचा चलल

गोली झेल सीना पर भीमा जान दे देलस

बाकी फिरँगिन के आपन नाव ना देलस

मैकु पलखत पाके आपन नाव लेके परा गइल

चेतावे के कुँअर सिंह के बीच दरियाव गइल,

हारदाव देके तब डगलस निसाना साध गोली चला देलस

वार कर के धोखा से, बहादुरी के नँाव पर

टीका कलक के लगा देलस,

भारी दगा देलस,

गोली लागल बँाह में, कुँअर सिंह

हाथी से कूद गइले "जै गगा" बोल के

मैकू के नाव में,

जेकि बड़ा मौका से नगिचा पहुँच गइल,

ओह पार, जयकार दल में कुँअर सिंह के मच गइल

एह पार, डगलस लुगार्ड

अपना सेना के साथ हाथ मलत रह गइले

कुंअर सिंह पार भइले, मिल गइले साथिन में,

गदर सतावन के

महीना रहे सावन के

आसमान बनत रहे धरती के दरपन,

सुरज के लड़ाई में भारत के पहिला सिंह गरजन

घाट पर आके दहाड़ उठल घाहिल सिंह

"जगदीसपुर फिरगी के निसानी लेके ना जाइव,

गोली फिरगी के लागल जीना बाँह में

ऊ बाँह नाहि रही तन में कुँअर सिंह के

रहीम खाँ ! निसान सिंह ! रितुभजन ! रणदलन !

केकरा में हिम्मत बा ? आगे बढ़S ?

खीचS तरवार आऊर झटका से, काटदS

ऊं बाँह, जे निसाना बनल दुस्मन के गोली के।"

केकरो में दम नइखे ?

सब केहू ऑखिन में लोर भरके मूड़ी नवा लेलS

चेहरा मरहतेया बना लेलS

अरे भाई, ई सब ह कीमत अजादी के,

बिना आपना लोहू के धारा बहवले जे मिली आजादी

ऊ कौधा अस कौध के बदरी में जुका जाई,

बिना रकत दान के जे आई सुराज

ओकरा दिया के टेम्ह लड़खड़ा जाई,

काल के भँवर में ऊ बुल्ला अस फूट के बिला जाई,

बलिदान नेव हऽ आजादी के महल के

वीरता के कचन के कसे के कसौटी हऽ रकत दान,

रहीम खाँ ! निसान सिंह ! रितुभंजन ! रणदलन !

दाया-माया, मोह-छोह नारी के सिंगार हऽ

रकत के फुहार नाहर सूरमा बलिदानी के

दिलग्गी खेलवाड़ हऽ

एब केहू पत्थल के मूरत बनल बाड़ऽ ?

आगे बढ़ऽ ।

खैर, मत मान हुकुम, तेगा त हमार करी हुकुम उदूली ना

कुँअर सिंह के खड़ग कबो आपन धरम भूली ना,

दुविधा न जाने जब निकलेले म्यान से

टूटेले निसान पर जइसे बज्र छटे आसमान से,

हरदम पियासल रहल एकर धार

खाली ना गइल कबों एकर वार।"

एतना कह खिचलन तरवार बाबू कुँअर सिंह

आसमान के बिजुरी फीका परल

लोगन के आँखिन चकाचौंध भरल

रोके के हिम्मत अब केकरा रहे ?

कुँअर सिंह के कृपान जब मेयान से बहरा गइल,

नागिन अस चक्कर काट हवा में लहरा गइल,

छन भर खातिर सउंसे धरती थरथरा गइल

आसमान घबड़ा गइल,

ऊपर चमकल बिजुरी, नीचे चमकल तेगा

चारों ओर जोत जगमगा गइल

मरलन छेव बाँह गिरल

गंगा के रेती रकत से नहा गइल

धारा फूट गंगा में समा गइल।

कटल बाँह हाथ में उठा के तब

आगे बढ़ गगा के धारा में आके तब

कहलन बाबू कुँअर सिंह - "मातु गग !

तोहरा तरग पर हमार बाँह अरपित बा,

जीवन हमार देस खातिर समरपित बा,

इचिके असमजस ना, बड़ा मन हरखित बा,

अग-अग कट जाय, कौनो परवाह ना,

देस के इज्जत बाँचे, इहे एक चाह बा

जबले फिरगिन के देस से भगाइब ना

चैन नाही लेब, सुख पाइब ना।"

एकरा बाद बाँह गिरला गगा में लुका गइल,

गगा के लहरिया पर सोनित के धारा से लिखा गइल

अमर कहानी बलिदानी के

बाबू कुँअर सिंह अभिमानी के।

गदर संतावन के।

महीना रहे सावन के

सुराज के लड़ाई में भारथ के पहिला सिंह गरजन

बनल रहे आसमान धरती के दरपन।

परिशिष्ट : 2

निर्धिन राम के रामायण का कुछ अंश

स्रोत सूची

(क) लिखित श्रोत सामग्री

1. निर्धिन राम का हस्तलिखित अप्रकाशित रामायण

2. भोजपुरी लोकोक्तिया - हिन्दुस्तानी, प्रयाग, 1939

3. कवि कैलाश के सम्बंध में स्वतंत्रता सेनानियों के पत्र (अप्रकाशित)

4. अमर शहीद कवि कैलाश, यमुना प्रसाद उपाध्याय, ससार प्रेस, आरा।

(ख) मौखिक श्रोत (सकलन- व्यक्तिगत)

ओरल फॉक टेल्स कैसेट न0 1,2,3

ओरल सेइग्स कैसेट नं0 - 4

ओरल फॉक साग्स कैसेट न0 5

सुखदेव भगत से सम्बन्धित -

ओरल हिस्ट्री कैसेट नं0 S- 1,2,3,4,5,6,7,8 आदि।

इनमें सुखदेव भगत के शिष्यों का सस्मरण , उनके गाव के कुछ निवासी तथा आस-पास के लोगों का साक्षात्कार इत्यादि शामिल है।

निर्धिन राम के सम्बन्ध में-

ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 N- 1,2,3,4.....

इसमें निर्धिन राम के परिवार वालों, आस-पास के लोगों तथा उनके सम्बन्ध में भोजपुर जिले के जीवित स्वतंत्रता सेनानियों का साक्षात्कार शामिल हैं।

कवि कैलाश से सम्बन्धित-

ओरल हिस्ट्री कैसेट न0 K-1,2,3,4,.....

इनमें कवि कैलाश से सम्बन्धित लोक चर्चाओं का संकलन, कवि कैलाश के सम्बन्ध में

स्वतत्रता सेनानियों का साक्षात्कार, लोकस्मृतियों में जीवित कवि कैलाश की लोकोक्तियां, कवित्त एवं गीत इत्यादि शामिल है।

साहित्यिक श्रोत

भारतेन्दु की रचनाएं-

भारतेन्दु समग्र सम्पादन, हेमन्त शर्मा, हिन्दी सस्थान वाराणसी, 1989

प्रेमचन्द की रचनाएं-

मगलाचरण, इलाहाबाद, 1962

गबन, इलाहाबाद, 1975

गुप्तधन, तीन जिल्द, इलाहाबाद, 1978

कफन, इलाहाबाद, 1973

कलम, तलवार और त्याग, इलाहाबाद, 1979

कर्म-भूमि, इलाहाबाद, 1979

कायाकल्प, इलाहाबाद, 1980

गोदान, इलाहाबाद, 1973

कुछ विचार, इलाहाबाद,1973

मगल सूत्र व अन्य रचनाए, इलाहाबाद 1972

मानसरोवर, 8 खण्ड, इलाहाबाद, 1978

निर्मला, इलाहाबाद, 1980

प्रतिज्ञा, इलाहाबाद, 1976

प्रेमाश्रम, इलाहाबाद, 1979

रगभूमि, इलाहाबाद, 1971

सेवासदन, इलाहाबाद, 1978

सोजेवतन, इलाहाबाद, 1969

वरदान, इलाहाबाद, 1980

यशपाल की रचनाएं

उपन्यास

'झूठा सच', वतन औदेश, लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

'झूठा सच', देश का भविष्य - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

मेरी-तेरी उसकी बात - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1989

देश द्रोही - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

दादा कॉमरेड - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

गीता-पार्टी कॉमरेड - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

दिव्या - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1989

अमिता - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन संस्करण, 1989

धर्मयुद्ध (कहानी सकलन) - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1978

राजनैतिक निबन्ध

राम राज्य की कथा - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1929

गांधी वाद की शव परीक्षा - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1929

मार्क्सवाद - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

देखा, सोचा, समझा - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1991

क्रान्तिकारी जीवन के संस्मरण

सिंहावलोकन (सम्पूर्ण) - लोकभारती, इलाहाबाद, नवीन सस्करण, 1990

(घ) सहायक ग्रन्थ (क्रम अग्रेजी वर्णमाला के आधार पर ही संयोजित है)।

बेली सी0 ए0, लोकल रुट्स ऑफ इण्डियन पॉलिटिक्स- इलाहाबाद- 1880- 1920 ऑक्सफोर्ड, 1975

बोस, सुभाष, द इण्डियन स्ट्रगल, कलकत्ता, 1935

ब्रास, पॉल, लैंग्वेज, रिलिजन एण्ड पॉलिटिक्स इन नॉर्थ इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1979।

ब्राउन जुडिथ, गान्धी राइज टू पावर इन इण्डियन पॉलिटिक्स (1915-22),कैम्ब्रिज, 1972।

बॉयड, विलेज फॉक इन इन्डिया, 1929

ब्रिगस, जी0 डब्ल्यू0, द चमार्स - दिल्ली, 1920

चन्द्र, बिपन, नेशनलिज्म एण्ड कॉलोनियलिज्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1966

चन्द्र, सुधीर, द ऑप्रिसिव प्रेजेन्ट, लिट्रेचर एण्ड सोशल कॉन्शसनेस इन कॉलोनियल इण्डिया, ओ0 यू0 पी0, 1992।

देसाई, ए0 आर0, पिजेन्ट स्ट्रगलस इन इण्डिया, दिल्ली, 1979

- सोशल बैकग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, बॉम्बे, 1959।

दत्त, आर0 - इण्डिया टूडे, बॉम्बे, 1949

धनाग्रे, डी0 एन0, एग्रेरेरियन मूवमेन्ट एण्ड गाधीयन पॉलिटिक्स, आगरा, 1975

इरिक्सन, इरिक, गाधीज टुथ, लन्दन, 1970

फिशर, एरनेस्ट, नेशेलिटी ऑफ आर्ट - ए मार्कसिस्ट एप्रोच, हर्मण्ड्सवर्थ, 1963

गॉधी, एम0 के0, द कॉलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाधी, अहमदाबाद, 1965-66

गोपाल एस0, जवाहर लाल नेहरू, बॉम्बे, 1975

ग्रेमसी, एंटोनियो, सेलेक्शन फ्रॉम द प्रिजन नोट बुक्स, न्यूयार्क, 1979

गुहा, रंजीत, सबॉल्टर्न स्टडीज, 6 खण्ड, दिल्ली 1982, 1983, 1994, 1985, 1986।

- एलिमेन्ट्री ऑस्पेक्ट ऑफ पिजेन्ट इन्सर्जेन्सी- ओ0 यू0 पी0 1982

ग्रियर्सन, जी0 ए0, बिहार पिजेन्ट लाइफ, पटना, 1918

हसन, मुशीरुल, नेशनलिज्म एण्ड कॉम्युनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया 1916-28, दिल्ली, 1979।

हेमसाथ सी0 एच0, इण्डियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफार्म प्रिन्सटन, 1964

हार्डिमैन, डेविड, पिजेंट नेशनलिस्ट ऑफ गुजरात, खेड़ा डिस्ट्रिक्ट, 1919-34, दिल्ली, 1984,

देवी मूवमेंट - सर्वाल्टर्न स्टडीज खण्ड III- दिल्ली।

कुमार, कपिल, काग्रेस एण्ड क्लासेज, दिल्ली, 1988

कुमार, रवीन्द्र, वेस्टर्न इण्डिया इन द नाइनटिंथ सेन्चुरी, लन्दन, 1968।

- एसेज इन द सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, कलकत्ता, 1983

लाफब्रे, जे0, द ग्रेट फियर ऑफ 1789-रुरल पैनिक इन रिवोल्यूशनरी फ्रांस, लन्दन, 1973।

मजुमदार, आर0 सी0, ब्रिटिश पैरामाउन्टेन्सी एण्ड इण्डियन रेनॉसॉ, बॉम्बे, 1974

- स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, बाम्बे, 1969

- हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट- 3 खण्ड, कलकत्ता, 1962-63

मित्तल, एम0 के0, पिजेंट अपराइजिंग्स एण्ड महात्मा गाधी इन नॉर्थ बिहार, मेरठ, 1978

मूर, बेरिगटन, सेशल ओरिजिन्स ऑफ डिक्टेटरशिप एण्ड डेमोक्रेसी, लंदन, 1967

मेसेलोस, जिम, नेशनलिज्म ऑन द इण्डियन सब कान्टिनेन्ट एन इन्ट्रोडक्टरी हिस्ट्री, मेलबॉर्न, 1972

मेकॉले बी0, इंगलिश एजुकेशन एण्ड दि ओरजिंस आफ इन्डियन नेशनलिज्म, न्यूयॉर्क, 1940

मेकलेन, जे0 आर0 इन्डियन नेशनलिज्म एन्ड दि यरली काग्रेस, प्रिन्स्टन, 1977

मिश्रा, बी0 बी0, द इन्डियन मिडिलक्लास - देयर ग्रोथ इन मॉडर्न टाइम्स, लन्दन,

1963:

मेहरोत्रा, एस0 आर0, इमर्जेन्स ऑफ इन्डियन नेशनल कांग्रेस, दिल्ली, 1971

नारवने, बी0 एस0, प्रेमचन्द्र - हिज लाइफ एण्ड वर्क, नयी दिल्ली, 1980

पाण्डे, ज्ञानेन्द्र, द एसेन्डेन्सी ऑफ द कांग्रेस इन यू0 पी0 1926-35, दिल्ली, 1978

- रैलिंग राउन्ड द काऊ सेक्टेरियन स्ट्राइफ इन भोजपुर रिजन, 1881-1917,

सेन्टर फॉर स्टडीज इन सोशल साइन्सेज (कलकत्ता, ऑकिजनल पेपर न0 39, 1981)

पाणिग्रही, डी0 एन0, वेजिजेट लिडरशीप (बी0 एन0 पाण्डेय सम्पादित) लीडरशिप इन साउथ एशिया, नयी दिल्ली, 1977

पनिक्कर, के0 एम0, एशिया एण्ड वेस्टर्न डॉमिनेन्स, लन्दन, 1959

रगा, एन0 जी0, रेवॉल्यूशनरी पिजेंट्स, नई दिल्ली, 1949

रिकॉर, पॉल, हर्मन्युटिक्स एण्ड दि ह्यूमन साइंसेज, पेरिस, 1981

रुदे, जॉर्ज, दि क्राउड इन फ्रेंच रिवोल्यूशन, ऑक्सफोर्ड, 1972

सरकार, सुमित, मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1983

- ए क्रिटिक ऑफ कॉलोनियल इण्डिया, कलकत्ता, 1985

सिद्दिकी, माजिद, एग्रेरेरियन अनरेस्ट इन नॉर्थ इण्डिया यू0 पी0 1918-22, नई दिल्ली, 1978

श्री निवास, एम0 एन0, सोशल चेन्ज इन मॉडर्न इण्डिया, कैलिफोर्निया, 1966

स्टोक, एरिक, पिजेन्ट एण्ड द राज, कैम्ब्रिज, 1978

सत्येन्द्र, डॉ0, लोक साहित्य विज्ञान, प्रयाग

श्रीवास्तव, एस0 एल0, फॉक कल्चर एण्ड ओरलट्रेडिशन (एकॉम्प्रेटिव स्टडीज ऑफ रिजन इन राजस्थान एण्ड इस्टर्न यू0 पी0),

यूनि0 ऑफ राजस्थान जयपुर, पी0 एच0 डी0 थिसिस, 1960

सिन्हा, सत्यव्रत, भोजपुरी लोकगाथा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1957

सरन, ए0 के0, आर्ट एण्ड रिचुअल एज मेथड ऑफ सोशल कन्ट्रोल एण्ड प्लैनिंग, इथिक्स,

1952-53, 13

थॉम्पसन, इ0 पी0, मेकिंग ऑफ द इंगलिश वर्किंग क्लास, लन्दन, 1963

थॉमस, पी0, इपीक्स मिथस एण्ड लिनेन्डस ऑफ इण्डिया, बॉम्बे, 1961

उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी लोक सस्कृति, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

- लोक साहित्य की भूमिका - प्रयाग, 1957

- स्टडीज इन इण्डियन फॉक कल्चर, कलकत्ता, 1964

वुल्फ एरिक, पिजेंट वार्स ऑफ द ट्वेन्टिथ सेन्चुरी, लन्दन, 1971

वर्मा, लालबहादुर - इतिहास के बारे में, प्रकाशन सस्थान, दिल्ली

विलियम, रेमन्ड, कल्चर एण्ड सोसाइटी, 1730- 1950, मिडलसेक्स, 1969

वटुक, वेद प्रकाश - स्टडीज इन इण्डियन फॉक ट्रेडिशन - नई दिल्ली, मनोहर, 1979

विद्यार्थी एल0 पी0 और गणेश चौबे - बिहार इन ओकलोर स्टडी, कलकत्ता, इन्डियन वलिफ्रेंशस, 1911

लेख -

अमीन शाहिद, पिजेन्ट्स एण्ड कैप्टिलस्टिस इन नॉर्दन इण्डिया, किसान इन द केन कॉमोडिटी इन गोरखपुर इन 1930, प्रकाशित (जर्नल इन पिजेन्ट स्टडीज, अप्रैल, 1989)

धनाग्रे, डी0 एन0,

सर्वाल्टर्न कॉन्शसनेस एण्ड पॉपुलिज्म, टू एप्रोपेज इन दि स्टडी ऑफ सोशल मूवमेन्टस इन इण्डिया सोशल साइन्टिस्ट, दिल्ली, 186

चटर्जी, पार्थ, फॉर एन इण्डियन हिस्ट्री ऑफ प्रिजेन्ट स्ट्रगल - सोशल साइन्टिस्ट 186

कुमार, कपिल, "किसानों और कॉंग्रेस के सम्बन्ध" सॉचा, 1989

पनिक्करके0 एन0 - कल्चर एण्ड आइडियोलॉजी, कन्ट्राडिक्शन इन इन्टेलेक्चुअल

ट्रान्सफार्मेशन ऑफ कॉलोनियल सोसाअठी इन इण्डिया - इकोनोमिक्स एण्ड पॉलिटिकलविकली दिसम्बर, 1987

सरकार, सुमित, समाजिक इतिहास - स्वरुप एव सम्भावनाए - सॉचा, 1989

थॉम्पसन, इ0 पी0 - फॉक लोर, एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड सोशल हिस्ट्री - आई0 एच0 आर0 वाल्यूम III न0 2- 1977

(च) पत्रिकाएं

डगर (भोजपुरी पत्रिका), चम्पारण

नोट्स एण्ड क्वैट्री, लन्दन

न्यूयॉर्क फॉकलोर, न्यूयार्क प्रेस

सम्मेलन पत्रिका, (लोक सस्कृति अक), इलाहाबाद

सोशल साइटिस्ट, दिल्ली

इकॉनोमिक एन्ड पॉलिटिकल विकली, बॉम्बे

इण्डियन हिस्टॉरिकल रिव्यू (आई0 एच0 आर0), दिल्ली

हिन्दुस्तानी पत्रिका, इलाहाबाद